प्रवचन -क्रम

1. व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज 2
2. असंग -भाव की साधना 15
3. आनंद का सृजन 46
4. साक्षी हो जाना ध्यान है 56
5. धर्म , सम्राट बनने की कला है 76
6. संन्यासः परम मुक्त जीवन 90

पहला प्रवचन

व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज

मेरे प्रिय आत्मन् !

जीवन जितना दिखाई पड़ता है, उतना ही नहीं है; बहुत कुछ है जो दिखाई नहीं पड़ता। सच तो यह है कि जो दिखाई पड़ता है, वह उसके समक्ष कुछ भी नहीं है जो दिखाई नहीं पड़ता है। एक वृक्ष को हम देखें। आकाश में फैली हुई शाखाएं दिखाई पड़ती हैं, हवाओं में नाचते हुए पत्ते दिखाई पड़ते हैं, सूरज की किरणों में मुस्कुराते हुए फूल दिखाई पड़ते हैं। लेकिन वे जड़ें नहीं दिखाई पड़ती हैं जिनके बिना यह वृक्ष बिल्कुल नहीं हो सकेगा। वे जड़ें पृथ्वी के नीचे छिपी हुई हैं। और अगर कोई उन जड़ों को भूल जाए, तो वृक्ष के प्राण उसी क्षण क्षीण होने शुरू हो जाएंगे। जो दिखाई पड़ता है वृक्ष, वह उस वृक्ष के ऊपर निर्भर है जो जमीन के नीचे छिपा है और दिखाई नहीं पड़ता है।

मनुष्य का जीवन भी जो दिखाई पड़ता है वह आकाश में फैले हुए पत्तों की तरह है, लेकिन जो नहीं दिखाई पड़ता परमात्मा, वह जड़ की तरह भीतर छिपा हुआ है। लेकिन उस परमात्मा से अगर हमारे संबंध छूटने शुरू हो जाएं, तो हमारे जीवन के पत्ते, फूल, शाखाएं सब कुम्हलानी शुरू हो जाती हैं।

जड़ दिखाई नहीं पड़ती है। परमात्मा भी दिखाई नहीं पड़ता है। जहां से जीवन फूटता है और विकसित होता है वही दिखाई नहीं पड़ता है। शायद उसका छिपा होना भी जरूरी है। जितना महत्वपूर्ण काम है, वह छिप कर ही संभव हो पाता है। वह अंधेरे में, मौन में, शांति में, एकांत में संभव हो पाता है। जड़ों को हम सूरज की रोशनी में निकाल लें, फिर वे काम करना बंद कर देंगी। वे छिप कर काम करती हैं। ऐसे ही परमात्मा भी जीवन के सारे प्रकट के भीतर अप्रकट होकर काम करता है। लेकिन जो है वह हमें दिखाई पड़ता है आंखों से और जो नहीं दिखाई पड़ता है, हम सोचते हैं वह नहीं है।

हम बहुत ज्यादा पार्थिव ढंग से सोचते हैं। अगर एक फूल के पास एक कवि को ले जाएं, एक प्रेमी को ले जाएं, एक चित्रकार को ले जाएं, तो उसे फूल में बहुत कुछ दिखाई पड़ता है, जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। और अगर वह फूल के सौंदर्य की बातें करे, तो हम कहेंगेः कहां है सौंदर्य? रंग है, आकार है, फूल में कुछ खनिज हैं, कुछ केमिकल्स हैं, कुछ पदार्थ है--सौंदर्य कहां है?

शायद फूल को प्रेम करने वाला सौंदर्य को निकाल कर अलग दिखा भी नहीं सकता। शायद वह कुछ भी नहीं कह सकता, हार जाएगा।

ऐसे ही, कुछ जीवन में जो महत्वपूर्ण है, वह भी उनको ही दिखाई पड़ता है जो देखने के लिए एक रिसेप्टिविटी, एक ग्राहकता अपने भीतर पैदा कर लेते हैं, अन्यथा दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन हमें तो अपने ही भीतर जो है वही दिखाई नहीं पड़ता। हम बाहर भटकते हुए लोग हैं, हमारी आंखें बाहर-बाहर घूमती हैं और जीवन समाप्त हो जाता है। और जो भीतर था उससे हमारी कोई पहचान भी नहीं हो पाती है।

यह जो भीतर है हमारे, इसका ही नाम परमात्मा है। लेकिन कैसे उसे खोजें? थोड़ी सी बातें इस संबंध में समझ लेनी जरूरी हैं।

आदमी के व्यक्तित्व के तीन तल हैं। एक शरीर, दूसरा मन, तीसरी आत्मा। शरीर से हम सबकी पहचान है। शरीर सबसे ऊपर का तल है, इसलिए सीधा दिखाई पड़ जाता है। उसे देखने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। जैसे किसी भवन के बाहर की दीवाल रास्ते से चलते हुए दिखाई पड़ जाती है, भवन के भीतरी कक्ष दिखाई नहीं पड़ते हैं। दीवाल तो चलते ही दिखाई पड़ जाती है, क्योंकि वह बाहर है। जो बाहर है वह बिना प्रयास के दिखाई पड़ जाता है। असल में, वही दिखाई पड़ता है बिना प्रयास के जो बाहर होता है, जो भीतर है उसके लिए कुछ प्रयास करना होगा, भीतर जाना पड़ेगा। अगर कोई किसी मंदिर के देवता को खोजना चाहे, तो मंदिर के भीतर जाना पड़ेगा। अगर कोई मंदिर की दीवालों को ही देखना चाहे, तो बाहर घूम कर ही लौट आ सकता है।

शरीर हमारे जीवन के मंदिर के बाहर का परकोटा है। उसके भीतर मन है। मन की भी थोड़ी-बहुत झलक हमें मिलती है, मन का भी थोड़ा-बहुत ख्याल हमें होता

है। क्योंकि दुख होता है, सुख होता है, क्रोध होता है, प्रेम होता है; शरीर को भूख लगती है, प्यास लगती है; ये सारी खबरें जिसे होती हैं... शरीर को तो ये खबरें नहीं हो सकतीं। शरीर के भीतर कोई है जिसे यह पता चलता है कि भूख लगी, जिसे पता चलता है कि पैर में तकलीफ है। पैर को यह कभी पता नहीं चलता कि पैर में तकलीफ है, सिर को कभी पता नहीं चलता कि सिर में दर्द है। दर्द किसी और को पता चलता है। यह जो पता चलता है, उससे थोड़ी सी झलक हमें भी मिलती है कि शरीर के भीतर मन जैसी भी कोई बात है। उसका भी थोड़ा अनुमान होता है। लेकिन उसके पीछे भी कोई और है, उसका हमें अनुमान भी नहीं हो पाता। उसका हमें ख्याल भी नहीं आ पाता। मंदिर की दीवाल से हम परिचित होते हैं, कुछ भीतर की दहलानों से परिचित होते हैं, लेकिन गर्भगृह से, जहां देवता का निवास है, उससे हम बिल्कुल ही अपरिचित रह जाते हैं।

कुछ कारण हैं, उनको समझ लें तो कुछ वृत्ति उस तरफ उठनी शुरू हो सकती है। शरीर के तल पर कुछ भूख है, कुछ प्यास है। मन के तल पर भी कुछ भूख है, कुछ प्यास है। और आत्मा के तल पर भी कुछ भूख और प्यास है। शरीर के तल पर जो भूख है उसे हम पूरा करते रहते हैं। शरीर मांग करता है--अगर शरीर को उसकी जरूरतें पूरी न हों, तो शरीर कष्ट में पड़ जाता है। अगर भूख लगी है और रोटी न मिले, तो शरीर कष्ट में पड़ जाएगा। कष्ट का मतलब है, वह जोर से मांग करने लगेगा कि रोटी दो। कष्ट का मतलब है, वह यह कहने लगेगा, अगर रोटी नहीं मिली तो मैं काम करने से इनकार करता हूं। कष्ट का मतलब यह है कि वह कहेगा कि रोटी अगर नहीं मिलती है तो मैं मरता हूं। कष्ट का मतलब है इस बात की खबर कि शरीर सहयोग छोड़ रहा है, इनकार कर रहा है, कोआपरेट करने से इनकार कर रहा है।

आपको रोटी देनी पड़ेगी, पानी देना पड़ेगा, हवा देनी पड़ेगी, कपड़े देने पड़ेंगे, गर्मी-सर्दी की हिफाजत करनी पड़ेगी। शरीर पूरे वक्त अपनी मांग कर रहा है। शरीर की ये मांगें अगर पूरी न की जाएं तो कष्ट मालूम पड़ेगा। कष्ट का अर्थ है, शरीर की मांग का पूरा न होना। और अगर मांगें पूरी कर दी जाएं तो कोई सुख मालूम नहीं पड़ेगा। यह समझ लेना जरूरी है। शरीर का स्वभाव है कि उसकी मांग पूरी न हो तो वह कष्ट अनुभव करेगा, मांग पूरी हो जाए तो बात खत्म हो गई, कोई सुख अनुभव नहीं होगा।

लेकिन हम कहते हैं कि जब ठीक खाना मिल जाता है तो बड़ा सुखद लगता है। हम कहते हैं, जब रात ठीक नींद आ जाती है तो बड़ा सुखद लगता है। उस सुखद का अर्थ है कष्ट का अभाव। वह सुख निगेटिव है। उस सुख की कोई पाजिटिव, कोई विधायक स्थिति नहीं है। पेट में भूख लगी है तो कष्ट मालूम होता है, रोटी पेट में डाल दी गई--तो अब कष्ट मालूम नहीं होता है, इसी को हम सुख समझ लेते हैं।

इसलिए जिनको निरंतर रोटी मिलती रहती है, जिन्हें निरंतर कपड़े मिलते हैं, जिन्हें निरंतर शरीर को कष्ट का कोई अवसर नहीं आता, वे बड़े परेशान हो जाते हैं। क्योंकि उन्हें सुख का जो अनुभव होता था--रोटी खा लेने से, कपड़े मिल जाने से, वह भी बंद हो जाता है। गरीब आदमी की तकलीफ होती है कि उसका शरीर कष्ट में है, अमीर आदमी की तकलीफ होती है कि उसे सुख बिल्कुल नहीं मिलता।

शरीर कोई सुख दे ही नहीं सकता; शरीर दो तरह के दुख देता है--या तो भूख का दुख देता है, या ज्यादा खाना खा लेने का दुख देता है। कम खाओ तो भी दुख देगा, ज्यादा खाओ तो भी दुख देगा। अगर बीच में खाओ तो दुख नहीं देगा, कष्ट नहीं देगा, बस। सुख शरीर कभी भी नहीं देता है। शरीर ने कभी किसी को कोई सुख नहीं दिया।

इसलिए जो लोग शरीर के तल पर ही जीते हैं उन्हें सुख कभी भी नहीं मिलता है। हां, उन्हें दो तरह के दुख मिल सकते हैं। गरीब का दुख; गरीब के दुख का मतलब है, शरीर की जरूरतें पूरी न होना। या उन्हें दुख मिल सकता है, अमीर का दुख; अमीर के दुख का मतलब है, जरूरत से ज्यादा चीजों का पूरा हो जाना। कम खा लो तो एक तकलीफ है, ज्यादा खा लो तो एक तकलीफ है। मकान न हो तो एक तकलीफ है और बहुत बड़ा मकान हो तो भी एक तकलीफ है। पैसा न हो तो भी एक तकलीफ है, बहुत पैसा हो जाए तो भी एक तकलीफ है। लेकिन शरीर के तल पर सुख कोई भी नहीं है। शरीर के तल पर सुख का अर्थ है कष्ट का न होना। बस इतना ही अर्थ है।

फिर दूसरा तल है मन का। मन की भी जरूरतें हैं, मन की भी मांगें हैं, मन की भी भूख है। संगीत के लिए, साहित्य के लिए, प्रेम के लिए, मित्रता के लिए,

कला के लिए मन की भूख है। मन की भी मांग है। शरीर बहुत स्थूल है, इसलिए उसकी जरूरतें स्थूल हैं--पानी, रोटी, मकान। मन सूक्ष्म है, उसकी मांग भी सूक्ष्म है--संगीत, साहित्य, प्रेम, कला। मन के तल पर स्थिति उलटी है। अगर संगीत न मिले तो कोई दुख न होगा।

आदिवासियों ने कभी भी नहीं सुना कोई शास्त्रीय संगीत, इस कारण वे दुखी नहीं हैं जंगल में कि मुझे शास्त्रीय संगीत सुनाई नहीं पड़ा तो मैं बहुत दुखी हूं। जो आदमी संस्कृत नहीं जानता उसने कालिदास के अदभुत ग्रंथ नहीं पढ़े, इस वजह से दुखी नहीं है कि मुझे बड़ा दुख हो रहा है कि मैंने कालिदास के ग्रंथ नहीं पढ़े। जिस आदमी ने रवींद्रनाथ का नाम नहीं सुना और गीतांजलि में कोई डुबकी नहीं लगाई, वह कोई दुख नहीं झेल रहा है। उसे कभी भी ख्याल नहीं आता सोते-जागते कि गीतांजलि नहीं पढ़ी तो मैं बड़ा दुखी हूं।

मन की बात उलटी है। मन की जरूरतें पूरी करो तो सुख मिलता है, जरूरतें पूरी न करो तो दुख नहीं मिलता, कष्ट नहीं मिलता। मन की जरूरतें पूरी न हों तो कोई कष्ट नहीं मिलता, जरूरतें पूरी हों तो सुख मिलता है; मन के तल पर कष्ट नहीं होता, सिर्फ सुख होता है। हां, मन के तल पर भी कष्ट मालूम पड़ सकता है, अगर सुख का अभाव रहे तो कष्ट मालूम पड़ सकता है। जिस आदमी ने शास्त्रीय संगीत सुन लिया, उसे अब सुनने को न मिले, तो सुख का अभाव उसे कष्ट जैसा मालूम पड़ेगा।

मन के तल पर कष्ट निगेटिव है, सुख का अभाव है। शरीर के तल पर सुख निगेटिव है, कष्ट का अभाव है। मन के तल पर सुख मिल सकता है, मन के तल पर कष्ट नहीं मिलता, कष्ट सिर्फ अभाव होता है।

लेकिन मन के तल के सुख बड़े भागने वाले सुख हैं, क्षणिक सुख हैं। कोई आदमी कितनी देर तक संगीत सुन सकता है? कोई आदमी कितनी देर तक काव्य में डूब सकता है? कोई आदमी कितनी देर तक प्रेम कर सकता है? कोई आदमी कितनी देर तक अपने प्रेमी का हाथ अपने हाथ में रख सकता है?

और एक मजा है मन के तल पर, मन हमेशा नये सुख की मांग करता है। अगर एक ही गीत आपने एक बार सुना तो सुखद लगेगा, दूसरी बार सुना तो उतना सुखद नहीं लगेगा, तीसरी बार सुना तो घबड़ाहट होने लगेगी, और दस बार सुनना पड़े तो आप भागने लगेंगे, और अगर पचास बार जबरदस्ती सुनाया जाए तो आप पागल हो जाएंगे। वही एक गीत! कोई प्रेमी मिलता है, उसे हमने गले से लगा लिया। एक क्षण तक सुख रहेगा; दो-तीन क्षण के बाद घबड़ाहट शुरू हो जाएगी; अगर आधा घंटे तक गले से लगाए रखना पड़े तो ऐसा लगेगा कि कोई जहर मिल जाए तो खा लें और मर जाएं। इससे कैसे छुटकारा हो?

मन की बड़ी क्षणिक अनुभूति है, थोड़ी ही देर में वह अनुभूति से इनकार करने लगता है। वह कहता हैः नया! और नया! और नया!

शरीर हमेशा पुराने को मांगता है, मन हमेशा नये को मांगता है। शरीर कहता है, कल जो हुआ था वही आज। अगर कल दस बजे भोजन मिला था, तो आज भी दस बजे भोजन मिलना चाहिए। अगर साढ़े दस बज गए तो शरीर में तकलीफ शुरू हो जाएगी। शरीर कहता है, कल जो खाट मिली थी सोने को, वही आज मिलनी चाहिए। शरीर आदत से जीता है, आदत सदा पुरानी होती है, आदत पुनरुक्ति होती है। इसलिए जो आदमी अपने शरीर को एक यंत्रवत ढाल लेता है, उस आदमी का शरीर सबसे कम कष्ट देता है--ठीक वक्त पर उठ आता है रोज, ठीक समय पर सो जाता है, ठीक समय पर खाना खाता है, जो खाना रोज खाता है वही खाता है, कोई गड़बड़ नहीं करता। शरीर यंत्र की तरह है, वह रोज पुराने की पुनरुक्ति मांगता है।

अगर शरीर को रोज-रोज नया दो, शरीर तकलीफ में पड़ जाता है, शरीर कष्ट में पड़ जाता है। शरीर एडजस्ट नहीं हो पाता नये के लिए। शरीर पुराने की मांग है। इसलिए जो पुरानी दुनिया थी, उसमें शरीर बहुत आराम में था। सब बंधा हुआ काम था। नई दुनिया में बड़ी मुश्किल हो गई, सब चीजें रोज बदल जाती हैं। शरीर को बड़ी तकलीफ हो रही है। इसलिए शरीर बहुत सी बीमारियां अनुभव कर रहा है, जो पुरानी दुनिया में उसने कभी अनुभव नहीं की थीं। नई बीमारियां, नई तकलीफें शरीर के लिए खड़ी हो गई हैं, क्योंकि शरीर की सारी की सारी व्यवस्था टूट गई है। एक आदमी हवाई जहाज से चलता है। आज सुबह हिंदुस्तान में है, थोड़ी देर बाद पाकिस्तान में है, थोड़ी देर बाद अरब में है, थोड़ी देर बाद यूरोप में है। सब बदल जाता है। दिन भर में दस मुल्क बदल जाते हैं, दस तरह का खाना बदल

जाता है, दस तरह की हवा बदल जाती है, दस तरह के मकानों में सोना पड़ता है, दस तरह की भाषाएं बदल जाती हैं, दस तरह के लोग बदल जाते हैं। शरीर बड़ी मुश्किल में पड़ता है कि यह क्या हो रहा है? शरीर बहुत बेचैन हो जाता है।

शरीर बंधा हुआ क्रम चाहता है, शरीर की आकांक्षा पुराने के लिए है। इसलिए जितने शरीरवादी लोग होंगे, वे हमेशा पुराने के प्रति उत्सुक और आतुर होंगे। नये के प्रति उनकी कोई आकांक्षा नहीं होगी।

लेकिन मन रोज नये की मांग करता है। वह कहता है, रोज नया चाहिए, रोज नया चाहिए। कल जो किताब पढ़ी, आज नहीं पढ़नी है। कल जो फिल्म देखी, आज नहीं देखनी है। कल जो गीत सुना, अब नहीं सुनना है। यह मांग मन की बढ़ती चली जाती है--रोज नया, रोज नया--बड़ी मुश्किल हो गई है!

मैंने सुना है हवाना में, हवाई द्वीप में उन्होंने हवाना को इस तरह बनाया है कि रात-दिन हवाना को बदलने की कोशिश चलती रहती है, उस नगर को। क्योंकि कल जो यात्री आए थे, ताकि वे कल फिर आ सकें और वे यह अनुभव न करें कि पुरानी बस्ती में आ गए। अगर एक होटल में आप ठहरते हैं आज जाकर और कल आप फिर उस होटल में ठहरने जाएं, तो आप पाएंगे कि चीजें बहुत कुछ बदल गई हैं, बोर्ड का रंग बदल गया, कमरों के रंग बदल गए, लाइट बदल गए, खिड़कियां तक दूसरी लगा दी गई हैं। क्यों? ताकि आप यह न कह सकें कि वही होटल फिर।

अमेरिका जैसे मुल्कों में, जो मन की दुनिया में जी रहे हैं, तीव्र परेशानी है रोज नये को लाने की। इसलिए अमेरिका में इतने जोर का तलाक है--पति भी पुराना पसंद नहीं पड़ता, पत्नी भी पुरानी पसंद नहीं पड़ती।

हिंदुस्तान में तलाक जैसी बात हमारी कल्पना में नहीं आती। हमने विवाह को शरीर के तल पर बांध रखा है; जिस दिन विवाह को मन के तल पर उठाया, उसी दिन तकलीफ शुरू हो जाती है। क्योंकि मन कहता है, रोज नया! वही पत्नी रोज-रोज उबाने वाली, घबड़ाने वाली मालूम पड़ने लगती है। वही पति रोज सुबह दिखाई पड़ता है, वह बहुत घबड़ाने वाला हो जाता है।

मैंने सुना है, एक अमरीकी अभिनेत्री ने जीवन में बत्तीस विवाह किए। और जब उसने इकतीसवां विवाह किया, तो पंद्रह दिन बात पता चला कि यह आदमी एक दफा और उसका पति रह चुका है। इतनी जल्दी-जल्दी बदलाहट की थी कि फुर्सत कहां रही याद रखने की कि कौन आदमी कितनी बार बदल गया है, क्या हुआ है।

अगर मन के तल पर विवाह को लाया गया तो विवाह टिकने वाला नहीं है, वह क्षण-क्षण में बदलने की मांग वहां भी शुरू हो जाएगी। और अभी तलाक है, कल तलाक भी ऐसा लगेगा कि तलाक में भी तो साल दो साल लगते हैं, शादी-विवाह करो। इसलिए नये-नये प्रयोग वहां चल रहे हैं--ट्रायल मैरिज है; कि शादी मत करो, पहले ट्रायल करो; अगर ट्रायल में ही ऊब जाओ तो झंझट खत्म कर दो।

और एक बहुत बड़े आदमी ने, जज लिंडसे ने ट्रायल मैरिज की तारीफ की अमेरिका में, और एक बड़ी किताब लिखी कि विवाह मत करो, सिर्फ प्रायोगिक विवाह करो, एक्सपेरिमेंटल करो। फिर जब तुम बिल्कुल पक्का कर लो, तब करना। और मैं जानता हूं कि अगर प्रायोगिक विवाह किया जाए, तो कोई आदमी कभी पक्का निर्णय लेने की हिम्मत नहीं कर सकेगा। जिंदगी के मरते दम तक वह सोचेगा कि क्या पता झंझट हो जाए, फिर कल बदलना पड़े, प्रयोग चलने दो।

मन रोज नये की मांग करेगा। मन के तल पर पुराना घबड़ाने वाला है, नया स्वीकृत; चाहे पुराने से बुरा भी हो, नया होना काफी है। शरीर के तल पर नया चाहे पुराने से अच्छा भी हो, तो भी शरीर स्वीकार नहीं करना चाहता, वह इनकार करता है, वह अपनी आदत में जीना चाहता है। मन, मन नये की मांग करता है, चाहे बुरा ही क्यों न हो।

मन नये की मांग क्यों करता है? क्योंकि मन एक क्षण में तृप्त हो जाता है, एक क्षण से ज्यादा नहीं मांगता; मन कहता है, बस बहुत है। एक क्षण में झलक मिल जाती है, बात खत्म हो जाती है। इसलिए मन के सारे सुख क्षणिक होंगे; मन का कोई सुख शाश्वत नहीं हो सकता, सनातन नहीं हो सकता, सदा रहने वाला नहीं हो सकता। आएगा और जाएगा। आ भी नहीं पाएगा और आप पाएंगे कि वह गया।

एक आदमी एक कार खरीदना चाहता है। कितनी रात, कितनी चिंता, कितनी योजनाएं बनाता है! फिर कार खरीद कर घर ले आता है। एक क्षण मन पुलक से भरता है, दूसरे क्षण बात खत्म हो गई। कार घर आ गई और सब खत्म हो गया। अब क्या करोगे? फिर दूसरे दिन से दूसरी कार पर नजर है, दूसरे मकान पर नजर है। वह भी

मिल जाएगा, और मिलते ही सब समाप्त हो जाएगा, मिला कि गया। क्योंकि मन एक क्षण से ज्यादा कोई सुख लेने को तैयार नहीं। वह फिर नये की मांग करने लगता है।

और मन के तल पर नये की मांग ही, अगर नया पूरा न हो, उपलब्ध न हो, तो कष्ट जैसा मालूम पड़ने लगता है। मन के तल पर सुख क्षणिक है और कष्ट स्थायी मालूम पड़ेगा। बीच-बीच में क्षण भर को सुख मिलेगा, फिर कष्ट थिर हो जाएगा। फिर सुख की झलक मिलेगी, फिर कष्ट थिर हो जाएगा। जैसे अंधेरी रात में कभी कोई बिजली चमकती हो। बिजली चमकती है, रोशनी हो जाती है, फिर घुप्प अंधेरा हो जाता है। मन के तल पर ऐसा ही है। नई चीज मिलती है--एक चमक, बिजली; फिर घुप्प अंधेरा। कितनी नई चीजें मिलेंगी? चौबीस घंटे कितनी नई चीजें पाई जा सकती हैं? मन के तल पर सुख की झलक मिलती है; सुख क्षण भर को मिलता है; फिर खो जाता है।

जो आदमी शरीर के तल पर ही जीएगा, उसे कोई सुख नहीं मिलेगा। जो आदमी मन के तल पर जीएगा, उसे क्षणिक झलक मिलेगी, लेकिन स्थायी सुख नहीं मिलेगा।

तीसरा तल आत्मा का है। आत्मा की भी भूख है। जैसे शरीर की भूख है, मन की भूख है, आत्मा की भी भूख है। जैसे शरीर की प्यास है, मन की प्यास है, ऐसे ही आत्मा की भी प्यास है। आत्मा की भूख या आत्मा के भोजन का नाम ही परमात्मा है या धर्म है। वह जो आत्मा चाहती है--उसकी भी प्यास और भूख है।

और आत्मा के तल पर एक मजा है, एक और स्वभाव है वहां--जब तक परमात्मा न मिले, तब तक आदमी की जिंदगी एक बेचैनी होगी, एक अशांति होगी। उसे चाहे पता हो या न पता हो इस भीतरी भूख का, उसकी जिंदगी में एक बेचैनी, भीतर एक रेस्टलेसनेस भीतर सरकती रहेगी। उसे हमेशा ऐसा लगेगाः कुछ खोया हुआ है, कुछ खोया हुआ है, कुछ है जो नहीं मिला है। उसे पता भी नहीं है कि क्या खोया हुआ है। क्योंकि जो मिला ही नहीं है उसके खोने का पता भी कैसे हो सकता है? लेकिन एक अनजान बेचैनी, एक अनजान परेशानी, एक अशांति--चौबीस घंटे! खाना मिल जाएगा, फिर भी उसे लगेगाः कुछ है जो खोया हुआ है। मकान बन जाएगा, फिर भी लगेगाः बन गया सब, लेकिन कुछ है जो नहीं बना। संगीत सुनने का कहने को सुख मिला, लेकिन फिर भी कुछ है जो छूट गया। मन का सब मिल जाए, शरीर का सब मिल जाए, फिर भी पीछे एक खालीपन, एक एंप्टीनेस भीतर सरकती रहेगी। वह पीछे से चोट करती रहेगी।

वह चोट आत्मा की भूख है। वह कहती है आत्मा कि जब तक परमात्मा न मिल जाए, तब तक सब मिला हुआ धोखा है।

इस आत्मा की भूख को भी समझ लेना चाहिए। नहीं मिलता है परमात्मा, तो एक अनजाना दुख पूरे जीवन में छाया रहेगा। शरीर की तृप्तियां मिलेंगी, मन के सुख मिलेंगे, सब झलकेंगे, खो जाएंगे। लेकिन एक स्थायी स्वर दुख का, एक उदासी, एक बेचैनी, एक विषाद, एक एंग्विश, एक चिंता, एक एंग्जाइटी पीछे खड़ी रहेगी पूरे वक्त। जब तक नहीं मिलती है वह अनुभूति, जिसको हम परमात्मा कहें, तब तक यह बेचैनी खड़ी रहेगी। और जैसे ही उस अनुभूति की एक झलक मिल जाए, यह बेचैनी बिल्कुल समाप्त हो जाएगी; जैसे कभी थी ही नहीं। और एक बार वह झलक मिल जाए, तो वह झलक फिर कभी खोती नहीं।

शरीर को रोज भोजन देना पड़ता है, फिर चौबीस घंटे में भोजन चुक जाता है--फिर भोजन दो, फिर पानी दो--फिर पानी चुक जाता है। शरीर को चौबीस घंटे दो, तब शरीर शांत रहता है। मन को कितना ही दो, वह एक क्षण में चुक जाता है। वह कहता है, फिर! उसकी भूख एक क्षण में बदल जाती है। आत्मा को एक बार दे दो, फिर दुबारा उसकी मांग नहीं होती। जो मिल गया वह मिल गया और वह सदा के लिए मिल जाता है।

शरीर के तल पर सुख नहीं होता, सिर्फ कष्ट होते हैं या कष्ट का अभाव होता है। मन के तल पर सुख होता है, कष्ट नहीं होता, या सुख का अभाव होता है, जिसे हम कष्ट समझते हैं। आत्मा के तल पर होता है दुख और या होता है आनंद। दुख गया कि फिर जो शेष रह जाता है वह आनंद है। उस आनंद की तलाश ही धर्म है। उस परमात्मा नाम के भोजन की खोज, उस खोज का विज्ञान ही धर्म है। और आज मेरे मित्रों ने चाहा है कि मैं कहूं कि व्यस्त जीवन में उस परमात्मा नाम के भोजन को कैसे पाया जा सकता है?

निश्चित ही जीवन व्यस्त है, और सदा से व्यस्त रहा है। व्यस्त रहने के दो कारण हैं। एक तो कारण हैः शरीर और मन की जरूरतें पूरी करनी हैं। पूरी

करनी हैं तो व्यस्त रहना पड़ेगा। जिसको शरीर की ही जरूरतें पूरी करनी हैं, उसे बहुत व्यस्त नहीं रहना पड़ेगा, क्योंकि शरीर की जरूरतें बड़ी सीमित हैं।

जानवर है, एक शेर है, वह दिन में एक दफा उठता है, जाकर एक शिकार कर लेता है, खा-पीकर सो जाता है। उसकी जरूरत खत्म हो गई। फिर दिन भर वह व्यस्त नहीं रहता। भोजन मिल गया, बात खत्म हो गई। जानवर सिर्फ शरीर के तल पर जीता है। उसकी जरूरतें बहुत सीमित हैं। शरीर की मांग पूरी हो जाती है, बात खत्म हो जाती है।

फिर वह यह भी नहीं कहता शरीर कि यही जानवर कल खाया था, यही आज खाने लगे, बोर हो गए अब तो! कोई जानवर बोर होता ही नहीं, पता है आपको? कोई जानवर कभी ऊबता नहीं, बोर्डम जैसी चीज जानवर की दुनिया में नहीं होती, सिर्फ आदमी की दुनिया में होती है। क्योंकि जानवर के पास मन नहीं है। मन बोर होता है, ऊब जाता है।

शरीर तो कभी बोर नहीं होता, जो उसे कल मिला है वही दे दो, मजे से प्रसन्न होकर तृप्त हो जाता है, बात खत्म हो जाती है। शरीर तो एक यंत्र है। जैसे हम मोटर में पेट्रोल डाल देते हैं। वह मोटर यह नहीं कहती कि यही पेट्रोल कल डाला था और आज फिर वही डालने लगे, वही स्टो की दुकान पर फिर खड़े हो गए आकर! आज हमें दूसरा बर्मा तेल चाहिए। या तीसरा हमें इंजन आयल चाहिए। अब यही -यही तेल हम नहीं लेंगे।

नहीं, मोटर को कोई मतलब नहीं है, मोटर को पेट्रोल चाहिए। शरीर को भी कोई मतलब नहीं है कि आप क्या देते हो। उसकी जरूरत पूरी हो जानी चाहिए, बस। जरूरत पूरी हो गई, बात खत्म हो गई।

इसलिए जानवर ज्यादा व्यस्त नहीं है। जानवर बिल्कुल ही व्यस्त नहीं है। एक कुत्ते को देखो, एक बिल्ली को देखो। बिल्ली व्यस्त दिखाई पड़ेगी जब तक चूहा न मिल जाए, फिर उसके बाद बात खत्म हो गई। चूहा मिल गया, फिर बिल्ली शांति से बैठ कर पता नहीं ध्यान करती है, सपना देखती है, क्या करती है!

लेकिन मेरा ख्याल है कि बिल्ली ध्यान भी तभी करती होगी जब चूहा न मिलता होगा। चूहे का ध्यान करती होगी, बाकी ध्यान भी नहीं करती होगी।

मैंने सुना है, एक बिल्ली एक झाड़ के नीचे बैठ कर सपना देखती थी। एक कुत्ता पास से निकला और कुत्ते ने पूछा कि देवी, क्या देख रही हो? क्या सपना देख रही हो? तो उस बिल्ली ने कहा, बड़ा आश्चर्य! मैंने सपने में देखा कि वर्षा हो रही है और वर्षा में पानी की जगह चूहे गिर रहे हैं। उस कुत्ते ने कहा, मूर्ख बिल्ली! हमने पुरखों से कभी नहीं सुना, न हमारे शास्त्रों में लिखा हुआ है कि कभी चूहे गिरते हैं। जब भी वर्षा होती है और भगवान खुश होता है तो हड्डियां गिरती हैं! चूहे कभी सुने हैं? हमने भी सपने देखे हैं, लेकिन हड्डियां गिरती हैं, चूहे कभी गिरते ही नहीं, यह बात ही गलत है।

ठीक कहता है कुत्ता, क्योंकि कुत्ते के सपनों में चूहे क्यों गिरेंगे! कुत्ते के सपने में, जब भूख पेट में होती होगी, तो हड्डियां ही गिरती होंगी। बिल्ली के सपने में हड्डियां गिरने का क्या कारण है! जब भूख होती होगी तो चूहे गिरते होंगे। लेकिन सपने यहीं खत्म हो जाते हैं। शरीर से ज्यादा जानवर का व्यक्तित्व नहीं है।

और इसीलिए हम यह कह सकते हैं कि जिस आदमी का व्यक्तित्व शरीर पर खत्म हो जाता है, वह आदमी जानवर से ज्यादा नहीं है। उसके और जानवर के बीच बुनियादी फर्क नहीं है। जो आदमी सोचता है कि खाना-पीना, कपड़े पहन लेना, बस आ गई समाप्ति, दि एंड आ गया, वह आदमी जानवर के तल पर जी रहा है। उस आदमी की जिंदगी में भी एक तरह का संतोष होगा। क्योंकि जानवर बिल्कुल संतुष्ट मालूम पड़ते हैं। उस आदमी की जिंदगी में एक तरह की निश्चिंतता होगी। जानवर बिल्कुल निश्चिंत मालूम पड़ते हैं। उस तरह के आदमी के जीवन में बहुत चिंता नहीं होगी। जानवरों के जीवन में कोई चिंता नहीं है। लेकिन वह आदमी न तो उन सुखों को जान पाएगा जो मन के हैं और न उन आनंदों को जान पाएगा जो आत्मा के हैं।

इसलिए सुकरात से किसी ने पूछा कि एक असंतुष्ट सुकरात बनने की बजाय एक संतुष्ट सूअर बन जाने में हर्ज क्या है?

सुकरात ने कहा कि मैं एक संतुष्ट सूअर बनने की बजाय एक असंतुष्ट सुकरात ही बनना चाहूंगा। क्योंकि संतुष्ट सूअर उन लोकों की यात्रा नहीं कर पाता, जिन लोकों की यात्रा असंतुष्ट सुकरात कर सकता है।

इसलिए देखा होगा कि न तो जानवर बोर होते हैं, ऊबते हैं और न जानवर कभी हंसते हैं। किसी जानवर को कभी हंसते हुए देखा? अगर रास्ते पर कोई भैंस हंसती हुई मिल जाए, तो फिर जिंदगी भर सो नहीं सकोगे। शहर से भागोगे और सब काम छोड़ दोगे--कि मर गए! यह क्या हो गया कि भैंस और हंस रही है?

नहीं, कोई जानवर नहीं हंसता, सिवाय आदमी नाम के जानवर को छोड़ कर। क्योंकि हंसना और ऊबना मन की बातें हैं, शरीर की बातें नहीं। जानवर कभी नहीं हंसता। इसलिए अगर आदमी की परिभाषा करनी हो, तो हम कह सकते हैंः जो जानवर हंसता है उसका नाम आदमी है। हंसना आदमी का बुनियादी लक्षण है।

आदमी ऊबता भी है, हंसता भी है, क्योंकि उसके पास मन है। और मन की खुशियां भी हैं और मन की गैर-खुशियां भी हैं। लेकिन शरीर के तल पर ही अगर आदमी रह जाए, तो वह मशीन की तरह जीता है और समाप्त हो जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि उसके भीतर क्या-क्या छिपा था। कौन से रहस्य, कौन से अनजाने लोक, कौन सी यात्राएं बाकी थीं, जिन्हें वह करता तो जीवन धन्य हो जाता। वह उसे पता नहीं चलता। कुछ लोग शरीर पर रुक जाते हैं।

कुछ लोग शरीर से ऊपर उठते हैं और मन के सुखों की खोज करते हैं। मन के सुख बड़े अदभुत हैं, लेकिन बड़े सपनीले हैं, बड़े भ्रमीले हैं, आ भी नहीं पाते और चले जाते हैं। कैसा अदभुत है काव्य का सुख, कैसा अदभुत है वीणा का सुख, कैसा अदभुत है प्रेम का सुख, कैसी अदभुत हैं मन की गहराइयां, लेकिन बस एक क्षण छुओ और खो देना। बहुत इल्यूजरी हैं, बहुत भ्रामक हैं, बहुत काल्पनिक हैं। छुओ कि...

अप्रियजन के मिलने से दुख होता है। लेकिन प्रियजन के मिलते समय भी डर बना रहता है कि कहीं प्रियजन खो न जाए, और वह डर उस सुख को भी क्षीण कर जाता है। फूल खिलता है, सुख देता है। लेकिन डर साथ में बना है कि कुम्हला जाएगा, कुम्हला जाएगा, अब कुम्हलाया, अब कुम्हलाया। मन के तल पर कभी भी प्राण पूरी तरह तृप्त नहीं हो पाते, फूल खिला भी नहीं कि कुम्हलाना शुरू हो जाता है। वहां कोई थिरता नहीं है, वहां कोई स्थायित्व नहीं है। इसलिए जो लोग मन में जीते हैं, वे बड़ी एंग्जाइटी में, बड़ी चिंता में जीते हैं। वहां चौबीस घंटे एक ट्रेंबलिंग, एक कंपन चलता रहता है--अब गया, अब गया, अब गया; सब खो जाएगा। और जो मिलता है, वह मिलते ही हाथ से छूट जाता है। जैसे कोई पानी पर मुट्ठी बांधे; हाथ डालता है तो लगता है पानी हाथ में है, मुट्ठी बांधी कि खाली मुट्ठी रह जाती है, पानी बाहर हो जाता है। मन के सुख में हाथ डालो तो लगता है बहुत सुख मिल रहा है, मुट्ठी बांधो तो पता चलता है मुट्ठी खाली रह गई, सुख कहीं खो गया।

मन की दुनिया में जीना एक चिंता में जीना है। मन की दुनिया में जीना एक बेचैनी में जीना है। लेकिन कुछ लोग मन की दुनिया में जीते हैं और समाप्त हो जाते हैं। जो मन की दुनिया में जीते हैं, उनके विक्षिप्त होने का बहुत डर है। शरीर की दुनिया में जीने वाला आदमी कभी पागल नहीं होता; क्योंकि वह आदमी ही नहीं होता, वह आदमी से नीचे होता है। पागल होने के लिए भी आदमी होना जरूरी है। लेकिन जो मन की ही दुनिया में जीते हैं, वे करीब-करीब पागलपन में जीते हैं। इसलिए जितना ज्यादा मन की दुनिया में जीना शुरू होगा, उतनी विक्षिप्तता, मैडनेस बढ़नी शुरू हो जाएगी।

आज अमेरिका में सबसे ज्यादा पागलों की संख्या है सारी दुनिया में। आज अमेरिका में सबसे ज्यादा डाक्टर हैं दिमाग के। क्यों? अमेरिका बहुत तेजी से मन में जी रहा है। एक आदिवासी गांव में जाओ, बस्तर के किसी पहाड़ी में छिपे हुए गांव में, वहां पागल आदमी नहीं है। क्योंकि वह आदमी अभी आदमी के तल पर भी खड़े होकर नहीं जी रहा है। अभी वह संक्रमण से, ट्रांजीशन से नहीं गुजर रहा है, जहां से गुजरने में तकलीफ होगी। अगर रुक जाएगा तो तकलीफ बहुत होगी, अगर आगे बढ़ जाएगा तो बड़े सुख का लोक है।

आदमी एक ट्रांजीशन है--पशु से परमात्मा की तरफ। या तो पशु रहो तो एक तरह की शांति रहेगी, या परमात्मा हो जाओ तो एक तरह की शांति होगी। लेकिन पशु होने की शांति अज्ञान की शांति है, मरे हुए आदमी की शांति है।

परमात्मा होने की शांति जीवन की शांति है। मरघट भी शांत होता है, लेकिन मरघट की शांति का मतलब है कि वहां कोई है ही नहीं। एक मंदिर भी शांत हो सकता है, लेकिन मंदिर की शांति का अर्थ है कि वहां जो लोग हैं वे शांत हैं। एक स्थिति है पशु की, एक स्थिति है परमात्मा की, और बीच में एक ट्रांजीशन, एक बीच में संक्रमण का काल है मन का, वह स्थिति अधिकतम मनुष्यों की है--मन के बीच की।

जो लोग मन में ही कोशिश करते हैं जीने की, वे अधर में लटक जाते हैं। न वे पशु हैं, न वे परमात्मा हैं। दोनों तरफ का खिंचाव पड़ता है। शरीर कहता हैः पशु हो जाओ तो सब ठीक हो जाएगा। आत्मा कहती हैः और आगे बढ़ आओ तो सब ठीक हो जाएगा। लेकिन वहां मत रुको, जहां रुके हो। शरीर भी कहता है वहां मत रुको। आत्मा भी कहती है वहां मत रुको। और मन कहता है यहीं रुके रहो। और वहां रुकने जैसा कुछ नहीं मालूम पड़ता। एक क्षण सुख मिलता है, फिर घुप्प अंधेरा हो जाता है।

यह टेंशन है आदमी का, यह तनाव है। नीत्शे ने कहा है, आदमी एक रस्सी है, दो अनंतताओं के बीच फैली हुई। नीत्शे ने कहा कि आदमी एक ब्रिज है, दो अनंत के बीच।

ठीक कहता है वह, आदमी एक सेतु है, एक पुल। पीछे एक रास्ता है जो छूट गया, आगे एक रास्ता है जो अभी शुरू नहीं हुआ, और हम बीच के पुल पर खड़े हैं। और यह पुल ऐसा नहीं है कि लोहे का हो, यह पुल है मन का, जो पानी से भी ज्यादा चंचल है। इस पुल पर हम खड़े हैं जो कंप रहा है पूरे वक्त, कब ढह जाएगा पता नहीं। तो हमारे प्राण भी कंपते हैं। मन कहता है, लौट चलो पीछे। एक मन कहता है, बढ़ चलो आगे। और वह जो मन है हमारा, वह कहता है, यह सुख छोड़ो मत--यह प्रेम, यह पत्नी, यह संगीत, यह काव्य, ये सारे सुख छोड़ो मत, इन्हें भोग लो। मन कहता है, यहीं रुक जाओ! शरीर कहता है, पीछे लौट आओ! आगे कोई अनजान पुकार बुलाती है परमात्मा की कि बढ़े आओ! इस सब में आदमी एक चिंता में, परेशानी में पड़ जाता है।

जो लोग मन पर रुक जाते हैं, वे बड़ी गलत मंजिल पर रुक जाते हैं। वे आगे बढ़े शरीर से यह अच्छा किया, लेकिन अभी और आगे बढ़ना था, रुक नहीं जाना था। वह जो तीसरी पुकार है, वह परमात्मा की पुकार है--और आगे! और आगे!

फिर वहां एक जगह है जिसके आगे भी कुछ नहीं, जिसके पीछे भी कुछ नहीं। जहां पहुंचने के बाद फिर पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता। क्योंकि पाने की तभी तक इच्छा रहती है जब तक भीतर दुख है। दुख धक्के देता है कि पाओ कुछ, ताकि मैं मिट जाऊं। जब दुख मिट गया, पाने की दौड़ बंद हो जाती है। और जब वह मिल गया, जो सब कुछ है, तो पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता है।

लेकिन कैसे पाएं उसे? हम तो बहुत व्यस्त हैं, हम तो सुबह से लेकर सांझ तक व्यस्त हैं। या तो शरीर के काम में व्यस्त हैं या मन के काम में व्यस्त हैं। या तो शरीर की मांगें पूरी कर रहे हैं या मन की मांगें पूरी कर रहे हैं। हम परमात्मा के लिए समय कहां से निकालें? यह तीसरी मांग कौन पूरी करे, कैसे पूरी करे? कहां है समय? कहां है अवसर? कहां है सुविधा?

गांव-गांव मैं भटकता हूं, लोग मुझसे पूछते हैंः समय कहां है? सुविधा कहां है? कब पुकारें उस प्रभु को? कब खोजें उस आत्मा को? फुर्सत नहीं मिलती। सुबह से उठते हैं, और फैक्ट्री है। सांझ थके-मांदे लौटते हैं, और बच्चे हैं। दूसरी फैक्ट्री घर पर है--बच्चे की, पत्नी की। दिन भर एक फैक्ट्री चलाते हैं, सांझ आकर दूसरी फैक्ट्री में उलझ जाते हैं। इससे बचते हैं तो फिर सुबह वही फैक्ट्री है, फिर सांझ वही फैक्ट्री है। फैक्ट्री में चले जा रहे हैं, कहां है समय? कहां है सुविधा? कब खोजें उसको जिसकी आनंद की बातें करते हैं आप? किस मार्ग से जाएं? कौन जाए? कैसे जाएं? समय तो बिल्कुल नहीं है।

यह लोग बिल्कुल ठीक कहते हैं, गलत नहीं कहते हैं। लेकिन मेरा कहना यह है कि परमात्मा को खोजने के लिए समय की कोई जरूरत ही नहीं। मेरा कहना यह है कि परमात्मा को खोजने के लिए अलग समय की कोई जरूरत ही नहीं। परमात्मा की खोज काम्पिटीटिव नहीं है शरीर और मन से। शरीर और मन से परमात्मा की खोज की कोई प्रतियोगिता नहीं है। शरीर और मन में जरूर प्रतियोगिता है। अगर आपको शरीर की खोज करनी है, तो उतनी देर तक मन की खोज बंद कर देनी पड़ेगी। क्योंकि

जो आदमी रोटी कमाने गया है, वह उसी वक्त वीणा सीखने नहीं जा सकता। या जो आदमी वीणा सीखने गया है, उसी वक्त रोटी नहीं कमा सकता। इसीलिए तो यह गड़बड़ हो जाती है कि जो लोग रोटी कमाते हैं, वे कभी कविता नहीं करते; जो कविता कमाने लगते हैं, हमेशा भूखे मरते हैं। यह हमेशा हो जाता है, क्योंकि काम्पिटीटिव है। अगर मन की खोज करने जाते हैं, तो शरीर की खोज में थोड़ी-बहुत बाधा पड़ेगी।

इसीलिए हजारों साल तक मन की खोज सिर्फ राजा-महाराजा, धनपति लोग करते थे। गरीब आदमी मन की कोई खोज नहीं करता था। कहां सुविधा थी कि एक मेहतर, एक चमार बैठ कर वीणा सुने! राजा-महाराजा अपने महलों में वीणा सुनते थे, नृत्य देखते थे अप्सराओं के। एक भंगी-मेहतर को कहां फुर्सत थी, कहां सुविधा थी! दिन भर झाड़ू लगाएगा सड़क पर, नृत्य कब देखेगा? और झाड़ू लगाने वाला धीरे-धीरे इतना जड़ हो जाएगा कि उसको नृत्य देखने की समझ भी खो जाएगी। दिन-रात हथौड़ी पीटेगा, सितार कब सुनेगा? और हथौड़ी ठोकते-ठोकते कान ऐसे जड़ हो जाएंगे कि जब कोई सितार बजाएगा तो उसकी समझ के बाहर होगा कि यह क्या हो रहा है।

मैंने सुना है कि दो युवक चित्रकार होना चाहते थे। उनमें से एक तो फिर बहुत बड़ा चित्रकार हुआ, डोरिक। वे दोनों अपने गुरु के पास शिक्षा लेने गए। लेकिन दोनों गरीब थे। उनके पास फीस के पैसे भी नहीं थे। रंग खरीदने के पैसे भी नहीं थे। गुरु ने कहा कि मैं तुम्हें मुफ्त शिक्षा दे दूंगा, लेकिन रंग मैं कहां से लाऊंगा? मैं खुद ही गरीब हूं। कागज कहां से लाऊंगा? इतना इंतजाम तुम्हें करना पड़ेगा। वे कहने लगे, हमारे पास तो सिवाय चित्र सीखने की आकांक्षा के और कुछ भी नहीं है।

उनके गुरु ने कहा, तब बहुत मुश्किल है। तुम खाना कहां से खाओगे? अगर कागज-रंग भी कहीं से आ जाएं। तुम वस्त्र कहां से पहनोगे?

फिर उन दोनों ने यह तय किया कि एक मजदूरी करे, दूसरा सीख ले चित्रकला। उन्होंने पैसा फेंक कर निर्णय कर लिया, डोरिक का नाम आ गया, वह चित्र सीखने लगा। पांच साल वह सीखेगा, फिर पांच साल बाद उसका मित्र सीखेगा, फिर पांच साल वह मेहनत करेगा।

मित्र गया, वह सड़कों पर जाकर गिट्टियां तोड़ने लगा। पांच साल उसने गिट्टियां तोड़ीं और अपने साथी को चित्रकला सिखाई। पांच साल बाद उसके मित्र ने उसके पैर पकड़ लिए, आंसुओं से उसके पैर धो डाले और कहा कि तू अदभुत है, तूने एक बार भी यह न कहा कि मैं गिट्टी तोड़ रहा हूं। अब तू जा!

उस मित्र ने कहा कि अब मेरा जाना बहुत मुश्किल है, ये हाथ और ये अंगुलियां पत्थर जैसी हो गई हैं। अब ये, अब ये, अब ये पकड़ कर ब्रॅश को, तूलिका को, शायद ही चित्र बना सकें। लेकिन कोई हर्ज नहीं, तू चित्र बनाने लगा, चित्र बनने चाहिए। मेरा भी हाथ तो है उन चित्रों में, हालांकि मैंने चित्र नहीं बनाए, गिट्टी ही तोड़ी।

लेकिन मित्र बहुत रोने लगा कि यह तो बहुत दुर्भाग्य हो गया। तू गुरु के पास चल! गुरु ने भी उसके हाथ देख कर कहा कि ये हाथ तो इतने कड़े हो गए कि अब इन हाथों से तूलिका के सूक्ष्म अंक नहीं निर्मित किए जा सकते हैं। सूक्ष्म इनके कंपन खतम हो गए।

या तो गिट्टी तोड़ लो, या तूलिका पकड़ लो; वहां प्रतियोगिता है। इसलिए दुनिया में मन की आकांक्षा थोड़े से लोगों की पूरी हुई--कोई अशोक, कोई अकबर, कोई पीटर महान, कोई एलिजाबेथ, इस तरह के लोगों के कुछ सुख पूरे हुए मन के। आम आदमी शरीर के लिए ही गिट्टियां तोड़ता रहा है। और यह ठीक भी है, आदमी को लगता है कि या तो यह कर लो, या वह कर लो। भूख हो घर में, वीणा कैसे बजेगी? प्यास हो घर में, बीमारी हो घर में, चित्र कैसे बनेगा?

नहीं, यह नहीं हो सकता। इन दोनों में प्रतियोगिता है। इसी प्रतियोगिता के कारण आदमी पूछने लगता है कि परमात्मा को कहां खोजेंगे, कब खोजेंगे? समय कहां है! मन के सुख ही नहीं खोज पाते, आत्मा का आनंद कहां खोजेंगे?

यहीं मुझे कुछ कहना है। और वह मुझे यह कहना है, आत्मा की कोई प्रतियोगिता शरीर और मन से नहीं है। आत्मा की खोज के लिए अलग से समय निकालने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन समझें कि इस कमरे में हम हजार

कुर्सियां लाकर रख दें; सारी जगह भर जाए। और फिर हम से कोई कहे कि एक कुर्सी और रखनी है। तो हम कहेंगे, लेकिन जगह नहीं है; यह कुर्सी हम कहां रखें? जगह नहीं है, सब भर गई जगह, अब जगह नहीं है यहां और कुर्सी रखने की। लेकिन समझो कि हजार दीये इस कमरे में जलते हों और कोई आदमी हमसे कहे कि एक दीया और जलाना है। तो क्या हम यह कहेंगे कि अब रोशनी भर गई यहां; अब और रोशनी इस कमरे में नहीं भरी जा सकती? क्योंकि रोशनी काम्पिटीटिव नहीं है। एक दीये की रोशनी जगह घेर ले, तो ऐसा नहीं है कि अब दूसरी रोशनी को जगह घेरने के लिए न बचे; उसी जगह में वह रोशनी भी समा जाएगी। तीसरे दीये की रोशनी भी समा जाएगी, चौथे दीये की भी समा जाएगी। ऐसा नहीं है कि रोशनी जगह घेरती हो; कितने ही दीयों की रोशनी... हां, यह हो सकता है कि दीये जगह घेर लें, लेकिन रोशनी जगह नहीं घेरती। कितनी ही रोशनी इस कमरे में भरी जा सकती है। एक छोटा सा दीया भी इस कमरे को रोशन कर सकता है, हजारों दीयों की रोशनी भी इस कमरे को रोशन कर सकती है। लेकिन रोशनी एक-दूसरी रोशनी से टकराती नहीं।

हमने केवल शरीर और मन की ही आकांक्षाएं जानी हैं, जो कि टकराती हैं। हमें आत्मा की आकांक्षा का कोई पता नहीं, जो टकराती ही नहीं। तो यह तो पहले समझ लेना जरूरी है कि व्यस्त जीवन से परमात्मा की खोज का कोई विरोध नहीं है। असल में, व्यस्त जीवन से अलग परमात्मा के लिए समय खोजने की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारे व्यस्त जीवन में ही, तुम्हारे सब कुछ करने में ही--चाहे गिट्टी फोड़ो, चाहे मकान बनाओ, चाहे फैक्ट्री में कारखाना चलाओ, चाहे घर में रोटी बनाओ, चाहे कपड़े सीओ, चाहे वीणा बजाओ, चाहे चित्र बनाओ, कुछ भी करो--करने से परमात्मा की खोज का कोई विरोध नहीं है। क्योंकि परमात्मा की खोज एक नये प्रकार का करना नहीं है। वह एक नया एक्शन नहीं है। परमात्मा की खोज एक कांशसनेस है, एक चेतना है; एक्ट नहीं, डूइंग नहीं।

इस फर्क को थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

एक आदमी गिट्टी तोड़ रहा है, एक आदमी वीणा बजा रहा है--उन दो में से कोई एक ही काम एक समय में किया जा सकता है। लेकिन मेरा कहना यह है, आदमी गिट्टी तोड़े, और गिट्टी तोड़ते समय में ऐसी चेतना निर्मित कर सकता है कि परमात्मा की खोज जारी रहे, गिट्टी भी टूटे और परमात्मा की खोज जारी रहे। वीणा बजाए, वीणा भी बजे और परमात्मा की खोज जारी रहे।

और बड़े मजे की बात है कि जिस दिन गिट्टी तोड़ने के साथ परमात्मा की खोज जारी होती है, उस दिन गिट्टी पहले से ज्यादा कुशलता से टूटती है। क्योंकि परमात्मा की खोज के साथ ही सारे प्राण शांति, सारे प्राण आनंद से भरने शुरू हो जाते हैं, सारे प्राण एक नये संगीत से आंदोलित होने लगते हैं।

एक मंदिर बन रहा था। एक कवि उस मंदिर के पास से गुजर रहा था। एक पत्थर तोड़ते मजदूर से उसने पूछा कि मेरे दोस्त, तुम क्या कर रहे हो?

उस आदमी ने क्रोध से भरी आंखें ऊपर उठाईं और कहा, अंधे हो? दिखाई नहीं पड़ता कि मैं क्या कर रहा हूं? पत्थर तोड़ रहा हूं!

वह पूछने वाला कवि तो घबड़ा गया, वह तो डर गया। उसके पूछने में कुछ ऐसी बात तो न थी कि इतना क्रोध जाहिर किया जाए। लेकिन जिनके भीतर क्रोध भरा हो, वे कोई भी मौके-बेमौके क्रोध को निकालते रहते हैं। इससे कोई संबंध नहीं कि क्रोध का मौका है या नहीं। वह कवि आगे बढ़ा और उसे ख्याल आया कि मैं दूसरे आदमी से भी पूछूं, क्या पत्थर तोड़ने वाले सभी लोग इतने ही क्रोध से भरे हुए हैं! उसने एक दूसरे आदमी से पूछा कि दोस्त, क्या कर रहे हो?

उस आदमी ने थोड़ी देर तक तो सिर ही ऊपर नहीं उठाया, फिर बड़ी मुश्किल से सिर ऊपर उठाया--जैसे सिर पर कोई पहाड़ का बोझ हो, और उस आदमी ने कहा, क्या कर रहा हूं, कुछ भी नहीं कर रहा हूं--बच्चों के लिए, बेटों के लिए, मां-बाप के लिए रोटी-रोजी कमा रहा हूं। फिर धीरे से हथौड़ी उठा कर उसने पत्थर तोड़ने शुरू कर दिए। यह आदमी दूसरे ही तरह का था--उदास, बोझ से भरा हुआ।

वह आदमी फिर खोज किया, और कई पत्थर तोड़ने वाले थे, सीढ़ियों के पास एक जवान आदमी पत्थर तोड़ रहा था और गीत भी गा रहा था। वह उसके पास गया, उससे पूछा कि दोस्त, क्या कर रहे हो?

वह आदमी खड़ा हो गया और कहा, क्या कर रहा हूं! पूछते हो क्या कर रहा हूं! जैसे नाचता हो वह आदमी, जैसे उसकी वाणी में एक गीत हो और कहने लगा, भगवान का मंदिर बना रहा हूं।

ये तीनों आदमी पत्थर तोड़ रहे हैं--तीनों आदमी! एक आदमी पत्थर तोड़ रहा है क्रोध से। अब क्रोध से भी पत्थर तोड़ा जा सकता है। एक आदमी उदासी से पत्थर तोड़ रहा है। उदासी से भी पत्थर तोड़ा जा सकता है। एक आदमी आनंद से पत्थर तोड़ रहा है। आनंद से भी पत्थर तोड़ा जा सकता है। और न क्रोध बाधा बनता है, न उदासी, न आनंद। इनका कोई काम्पिटीशन पत्थर तोड़ने से नहीं है। इनकी कोई प्रतियोगिता पत्थर तोड़ने से नहीं है। वह आदमी यह नहीं कह सकता कि मैं पत्थर तोड़ रहा हूं तो मैं क्रोध कैसे करूं! वह आदमी यह नहीं कह सकता, दूसरा आदमी, मैं इस वक्त पत्थर तोड़ रहा हूं, उदास कैसे हो जाऊं! वह तीसरा आदमी यह नहीं कह सकता कि इस वक्त मैं पत्थर तोड़ रहा हूं, गीत कैसे गुनगुनाऊं! इस वक्त आनंदित कैसे हो जाऊं! नहीं; पत्थर तोड़ने से आनंद का कोई विरोध नहीं है।

इससे मैं क्या समझाना चाहता हूं?

इससे मैं यह समझाना चाहता हूं कि ध्यान का हमारे काम से कोई विरोध नहीं है। हम जिस काम को भी ध्यानपूर्वक करें, वही काम परमात्मा की तरफ ले जाने का मार्ग बन जाता है। जिस काम को भी व्यक्ति माइंडफुली, मेडिटेटिवली, ध्यानपूर्वक कर सके, वही काम परमात्मा का द्वार बन जाता है।

इसलिए व्यस्त जीवन से परमात्मा का कोई विरोध नहीं है। व्यस्त जीवन से आत्मा की खोज का कोई विरोध नहीं है।

मेडिटेटिवली, ध्यानपूर्वक हम काम कैसे करें?

अभी हम जो काम करते हैं, वह ध्यानपूर्वक बिल्कुल नहीं है। और लोगों से हम पूछते फिरते हैं कि हम ध्यान कैसे करें? कब करें? हमारे घर में तो जगह नहीं है जहां हम ध्यान करें।

जगह किसी घर में नहीं है। बच्चों की वजह से जगह घर में हो ही कैसे सकती है! बच्चे इतने पैदा होते चले जाते हैं कि सब घर छोटे होते चले जाते हैं। जगह कहां है? जगह कहीं भी नहीं है। शोरगुल इतना है, मुश्किल इतनी है, कहां बैठ जाएं? कहां ध्यान करें?

वे गलत प्रश्न पूछते हैं। यह सवाल नहीं है पूछने का कि कहां हम ध्यान करें, सवाल यह है--कैसे हम ध्यान करें? यह सवाल जगह का नहीं है, यह सवाल समय का नहीं है। लोग पूछते हैं, कब हम ध्यान करें, सुबह कि रात? यह भी सवाल गलत है। व्हेयर, कहां? व्हेन, कब? ये दोनों प्रश्न गलत हैं। सवाल सिर्फ एक है--हाऊ, कैसे? कैसे हम ध्यान करें? क्योंकि ध्यान का संबंध न समय से है और न स्थान से है; न टाइम से है, न स्पेस से है। ध्यान का संबंध एटिट्यूड से है, वृत्ति से है, भाव से है। इसलिए ध्यान में और व्यस्तता में कोई विरोध नहीं है। बल्कि यह मजे की बात है कि जितना ध्यानपूर्वक आप काम करें, उतने ही आप कम व्यस्त मालूम पड़ेंगे, उतने ही कम आक्युपाइड मालूम पड़ेंगे।

गांधी जैसे आदमी जो ध्यानपूर्वक जीते हैं, हम सारे लोगों से बहुत ज्यादा काम करते हैं और कभी यह चीख-पुकार नहीं मचाते कि मेरे पास समय नहीं है। गांधी ने इतना काम किया कि शायद पृथ्वी पर किसी दूसरे आदमी ने कभी नहीं किया होगा। इन पचास वर्षों में तो दुनिया में किसी आदमी ने इतना काम नहीं किया।

लेकिन इस आदमी को परमात्मा की खोज में कोई बाधा नहीं पड़ती। यह ऐसे-ऐसे छोटे काम भी करने को तैयार है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। ...

दूसरा प्रवचन

असंग-भाव की साधना

प्रश्नः असंग रहने के लिए आपने कहा--इसे जरा विस्तार से समझाएं। जो काम पर काम करते हुए काम का नुकसान होता हो, गलत होता हो या कोई काम न करता हो, कोई काम ठीक समय पर न देता हो और उससे नुकसान या वायदाखिलाफी होती हो, ऐसे लोगों पर शंका जाती है। उस समय कैसे रहना चाहिए? असंग का अर्थ तो मैं यही समझा हूं कि उस काम से या तो खामोशी, मौन कर लिया जाए या कुछ कहा ही न जाए।

दूसरा हैः ध्यान में बैठने में मन में यह भाव आता रहता है कि सजग, मौन होना है। क्या यह भाव आना चाहिए या नहीं? न आने के दूसरे विचार कभी-कभी आ जाते हैं।

तीसराः कुछ विचार ऐसे आते हैं जो दूसरों के नहीं--जैसे अपने काम के संबंध में ही होते हैं कि ऐसा होना चाहिए तो ठीक रहेगा, अथवा फलां का काम कैसे ठीक हो सकता है।

चौथाः क्या जितनी देर ध्यान में बैठना है उसमें हर समय लंबी श्वास छोड़नी चाहिए अथवा नेचरल जैसे चलती है चलने देना चाहिए।

मैं हर रोज सुबह लगभग तीन घंटे बैठता हूं। एक घंटा बैठ कर, एक घंटा लेट कर, एक घंटा सिद्धासन से। इसमें काफी टाइम बिना विचार के जाता है, पर विचार सर्वथा नहीं जाता है। जरा सजगता से चूकता हूं तो विचार आ जाता है। प्रयत्न यही रहता है कि सजग, मौन रहूं। आप तो पारदर्शी हैं, दूसरे की आत्मा को जानते हैं, बातें भी कर लेते हैं--जैसे गांधी जी की आत्मा से। क्या मेरी आत्मा से ध्यान पर, उसे कोई डायरेक्शन पहले से दे सकते हैं।

एक जगह आपने कहा है कि मौन में भी बात हो सकती है, वह कैसे?

असंग का यह अर्थ नहीं है। असंग का यह अर्थ नहीं है कि या तो चुप हो जाएं और जो होता है उसे होने दें। असंग का अर्थ यह है कि करते हुए अलग रहें। असंग का यह अर्थ है। जैसे कि उसको कहा भी जाए, जो उचित है वह कहा भी जाए, जो उचित है वह किया भी जाए और भीतर से पूरे समय यह जानें कि मैं अलग हूं। यह सब नाटक हो रहा है, यह अभिनय हो रहा है।

असंग का मतलब है, अभिनय की अवस्था। बाहर जो हो रहा है, उसका अभिनय से ज्यादा मूल्य नहीं है। उसके लिए मुझे भीतर पीड़ित होने, चिंतित होने, दुखी होने, या तनाव से भरने का कोई कारण नहीं है। बाहर एक अभिनय हो रहा है।

जैसे राम का पार्ट कर रहा है एक आदमी रामलीला में, सीता चोरी चली गई है, वह रो रहा है, छाती पीट रहा है...

प्रश्नः यह इतनी जल्दी तो आएगा नहीं।

न, जल्दी तो नहीं आएगा, लेकिन अभी तक...

प्रश्नः यह अपने दिमाग में आ जाए कि यह सब अभिनय हो रहा है--यदि आ जाए--तो आते-आते शायद...

हां, आते-आते आएगा। तो उसको तो ध्यान रखेंगे तो ही आएगा। पर असंग का मतलब यह नहीं है कि आप कुछ न करें। कुछ न करें तो आप टूट गए। असंग का मतलब है, करते हुए पृथकता का भाव। तो उसका एक रूप यह हुआ कि अभिनय का भाव, जो हम कर रहे हैं वह अभिनय से ज्यादा मूल्य का नहीं। और जब यह भाव गहरा होता चला जाएगा कि अभिनय है सिर्फ, तो हो गया, इसके बाद खतम हो गया, हमें कुछ उससे कुछ कारण भी नहीं रहा। एक ने कुछ गलती की, हमने उससे कह भी दिया कि यह गलती है, उसे समझा भी दिया। और हम बाहर हो गए उसके। क्योंकि हम बाहर थे ही पूरे वक्त, कहते समय भी बाहर थे।

तो इसका मतलब यह हुआ कि अपने भीतर एक ऐसा बिंदु खोजना है जो सदा बाहर रहे, असंग का मतलब यह हुआ। अपने भीतर एक ऐसी भावदशा खोजनी है जो हर स्थिति में बाहर है। आप चल रहे हैं, वह नहीं चल रही। आप बोल रहे हैं, वह नहीं बोल रही। आप काम कर रहे हैं, वह नहीं काम कर रही। तो इसको तो धीरे-धीरे... और ध्यान का ही विकास है वह। जैसे आप चल रहे हैं, तो चलते वक्त यह जानिए कि चल तो शरीर रहा है, मैं तो कहां चल रहा हूं! मैं चल ही कैसे सकता हूं? न आत्मा के पैर हैं, न आत्मा की गति है, चलूंगा कैसे? तो मैं तो हूं और शरीर चल रहा है।

अब हम बोल रहे हैं, तो बोल तो ओंठ से रहे हैं, गले से बोल रहे हैं। आत्मा के पास न गला है, न ओंठ हैं। तो बोल तो हम ओंठ से ही रहे हैं, आत्मा तो चुप बैठी है।

सुन रहे हैं आप, तो सुन तो यह कान और शरीर रहा है, आत्मा तो दूर खड़ी है।

इसको हर क्रिया में ध्यान रखें, साधारण क्रिया में। खाना खा रहे हैं, शरीर खाना खा रहा है, आत्मा तो निरंतर मौन है, निरंतर उपवास चल रहा है। वहां तो निरंतर उपवास चल रहा है, वहां तो कभी खाना खाया ही नहीं गया। तो हर छोटी-छोटी क्रिया में इसका ध्यान रखें कि मैं पृथक हूं।

यह जो पृथक-भाव है, भिन्न-भाव है, कि मैं दूर और अलग खड़ा हूं। तो एक नया बिंदु भीतर विकसित हो जाता है चेतना का। और तब आप दोहरे काम देखेंगे।

जैसे एक आदमी ने कुछ गलती की और आप उसे समझा रहे हैं। तो अभी क्या होता है कि आप समझाने वाले ही हो जाते हैं। दो रह जाते हैंः जिसको समझा रहे हैं वह और आप। तब तीन हो जाएंगेः जिसको समझा रहे हैं वह, आपका शरीर, आपका मन जो समझा रहा है और आप जो इन दोनों घटनाओं को देख रहे हैं, देख रहे हैं कि...

तो उसी की दिशा में मेहनत करने का नाम असंग भाव है। सब करते हुए--करने से कुछ भी नहीं छूटना है--सब करते हुए यह भाव रखना कि यह सब लीला है, अभिनय है, एक्टिंग से ज्यादा नहीं है। दुकान पर बैठे हैं, यह एक एक्टिंग का हिस्सा है। किसी से बात कर रहे हैं, यह एक एक्टिंग का हिस्सा है। इसलिए करना पूरी कुशलता से है, क्योंकि एक्टिंग में एफिशिएंसी और कुशलता पूरी चाहिए। करना पूरी कुशलता से, उसमें रत्ती भर चूकना नहीं है। लेकिन कुशलता के बाद भी यह ध्यान रखना है कि मैं तो पृथक हूं; जो हुआ, हुआ; नहीं हुआ, नहीं हुआ।

प्रश्नः हर समय यही ख्याल रखना है।

हर समय। वह चौबीस घंटे सोते-जागते, यानी सोते वक्त तक में, सोने गए हैं बिस्तर पर तो भी यह भाव लेकर ही सोना है कि शरीर सो रहा है, मैं तो सजग हूं, जागा ही हुआ हूं, मेरा सोना कैसा? यह भाव चौबीस घंटे हर क्रिया में...

प्रश्नः इसमें नींद ही नहीं आएगी। कि आएगी?

बराबर आएगी। इससे ज्यादा कुशल आएगी जितनी आती है। और जैसी भी आएगी उससे काम हो जाएगा। उससे कोई बाधा नहीं पड़ती।

तो असंग का मतलब यह है कि भीतर हमारे एक बिंदु है जो हर चीज में बाहर है। वह कहीं भी जुड़ नहीं गया, असंग यानी संग के बाहर है। भीड़ में खड़े हैं और हम अकेले हैं। काम कर रहे हैं और नहीं कर रहे हैं। खाना खा रहे हैं और नहीं खा रहे हैं।

प्रश्नः बोध होना चाहिए। वह बोध जो है, वह बोध तो बड़ा, मगर बोध रहना चाहिए हर बात का।

हर क्षण, हर मोमेंट उस बोध को बढ़ाते जाना है।

प्रश्नः तब वह असंग है।

हां, तब असंग होगा। और तब किसी काम से भागने की कोई जरूरत नहीं। इसलिए असंग संन्यास से ऊंची दशा है।

प्रश्नः बहुत ऊंची है, बहुत ऊंची है।

वह जो संन्यासी छोड़ कर भागता है, वह असंग नहीं है।

प्रश्नः वह उसके साथ में तो है। वह डरा हुआ है।

वह डरा हुआ है इसलिए भाग गया। आप दुकान पर बैठे हैं, आप उसमें उलझे हैं। वह डरा है कि दुकान पर बैठूंगा उलझ जाऊंगा, इसलिए दुकान छोड़ कर भाग गया। असंग वह नहीं है। असंग की दशा तो बहुत ऊंची है, असंग की दशा बहुत ऊंची है। तो उस पर ही मेहनत करनी है, वही असली बात है। धीरे-धीरे आएगी।

प्रश्नः हां, कोई बात नहीं। टाइम लगेगा, लगने दो।

वह साफ ख्याल में आ जाए कि यह भाव है...

प्रश्नः फिर तो मेरा ख्याल है कि बहुत सारी चीजें अपने आप साफ हो जाएंगी।

हां, अपने आप साफ हो जाएंगी, उसमें कोई बहुत मामला नहीं है। अब जैसे यही है कि ध्यान में मौन रहना चाहिए। यह भाव की कोई जरूरत नहीं है। हम तो मौन हैं ही और जो भी चल रहा है वह हमारे बाहर चल रहा है। विचार भी चल रहा है वह हमारे बाहर चल रहा है। हमको मौन होना नहीं है, हम तो मौन हैं ही, जो चल रहा है वह हमारे बाहर चल रहा है। हमने भूल से उसको अपने को एक कर लिया, वहां भूल हो गई।

जैसे जब आप बैठे हैं ध्यान में, तो विचार चल रहा है। हमने यह गलती कर ली, आइडेंटिटी कर ली हमने, तादात्म्य कर लिया कि यह विचार मैं हूं, मेरा है, यह भूल हो गई। यह विचार है और मैं मैं हूं। और यह विचार मेरे चारों तरफ घूम रहा है, जैसे पंखा घूम रहा है, जैसे मक्खी घूम रही है... यह विचार घूम रहा है, यह यह है, मैं मैं हूं, और मेरा इससे क्या लेना-देना है! जैसे ही यह भाव बढ़ता चला जाएगा, यह विचार क्षीण हो जाएगा। क्योंकि इस विचार में जो शक्ति आई है वह हमारे कारण ही आई है, वह हमारी ही दी हुई है। क्योंकि हमने इसको मेरा कहा है इसलिए यह बेचारा आ गया है। वह मेरा जैसे ही टूटा कि एक ब्रिज टूट गया। इसका आना अपने आप क्षीण हो जाएगा। और यह तब फिर तभी आएगा जब मैं बुलाऊंगा, उसके बिना नहीं आएगा। जब मैं कहूंगा कि आओ या मैं कहूंगा कि यह काम करो, तो ही आएगा। नहीं तो नहीं आएगा।

तो यह बात ही गलत है कि ध्यान में हमें मौन होना है। असल में, ध्यान का मतलब यह है कि हमें यह सतत जानना है कि हम मौन हैं। हम सदा से मौन हैं ही। यानी वहां जहां हम हैं वहां कभी कोई विचार प्रवेश किया ही नहीं है कभी, और कर भी नहीं सकता। वहां गति नहीं है प्रवेश की जहां हमारी चेतना है।

तो तादात्म्य को ही तोड़ना ध्यान है।

वह तो ये सारी बातें लोगों को समझाई नहीं जा सकती हैं, इसलिए मुसीबत है। इसलिए एक-एक कदम से उनसे बात करनी पड़ती है। एक-एक कदम से उनसे बात करनी पड़ती है कि मौन हो जाओ, फलां हो जाओ। ये सब बेकार बातें हैं।

प्रश्नः हां, बात समझ ली, यह तो चीज ही दूसरी है।

हां, मौन हम हैं ही, इसी भाव को जानना है। और आप हैरान होंगे कि जब आप बात कर रहे हैं, सोच रहे हैं, तब भी भीतर मौन हैं। वह जो बिल्कुल अंतर्तम दशा है वहां तो कभी कुछ विचार प्रवेश करता ही नहीं। जैसे समुद्र के ऊपर लहरें चलती रहती हैं और नीचे सब शांति है, वहां कोई लहर-वहर नहीं है। मीलों तक वहां कोई लहर नहीं है।

प्रश्नः तो यह मन फिर क्या चीज है?

असल में, हमारी चेतना की जो बाहर की पर्त है, उस बाहर की पर्त पर जो बाहर से चोटें पड़ती हैं, उसकी प्रतिक्रिया मन है, रिएक्शन मन है। जैसे आप बैठे हैं और मैंने धक्का मारा, तो मन कहेगा कि धक्का लगा, बचाव करो। तो यह हमारी चेतना का जो बिल्कुल बाहर का घेरा है। जैसे पानी का घेरा है समुद्र के ऊपर, हवा चली तो उस पर लहरें उठेंगी हवा के धक्के से।

प्रश्नः तो ऊपर लहर उठती है, नीचे शांति है।

बिल्कुल स्वाभाविक है। उठना चाहिए। जब हवा का धक्का लगेगा तो ऊपर लहर उठेगी। जब आप दुकान पर काम करने बैठेंगे और एक आदमी आकर गड़बड़ करेगा तो विचार उठेगा। यह विचार जो है मन की ऊपर की सतह पर लहर है।

लेकिन इसको बंद कर देंगे तो आप मर गए। क्योंकि फिर तो आप कुछ कर ही नहीं सकते। और संन्यासी इसीलिए मरा हुआ आदमी हो जाता है, क्योंकि वह वहां-वहां से भागता है जहां-जहां हवा है। क्योंकि जहां हवा आई, कंपन शुरू हुए। वह कहता हैः धन से दूर रहो, स्त्री से दूर रहो, मकान से दूर रहो, बेटे से दूर रहो, समाज से दूर रहो, भाग जाओ कहीं। वह इसीलिए कहता है कि हम इनके पास रहेंगे तो कंपन पैदा होंगे। और उसने अपने को कंपन से एक तरफ ही रखा है, इसलिए दिक्कत में पड़ा हुआ है।

और मेरा कहना यह है कि कंपन पैदा होने दो। वह जीवन का मतलब ही वह है कि कंपन पैदा होंगे। और जीवित चित्त का मतलब ही यह है कि वह तीव्र कंपन पैदा करेगा, सेंसिटिव होगा, ज्यादा सेंसिटिव होगा।

हम यहां इतने लोग बैठे हैं। यहां एक पत्थर रख दो और एक फूल रख दो। पंखा चलेगा तो फूल ज्यादा कंपेगा और पत्थर तो पड़ा रहेगा। क्योंकि पत्थर उतना संवेदनशील नहीं है। वह तो जितना संवेदनशील मन है उतना ही सूक्ष्म कंपन भी पकड़ेगा। इसलिए कंपन से भागना नहीं है। यह जानना है कि सब कंपनों को पकड़ते हुए भी केंद्र पर मैं निष्कंप हूं। वहां कोई कंपन नहीं है। इसलिए डर क्या है?

और मैं कंपन नहीं हूं, इस भाव को ही गहरे करते जाना है। असंग तो ध्यान की केंद्रीय प्रक्रिया है। और जो आदमी असंग भाव को साधता है, न ध्यान की जरूरत है, न किसी बात की। धीरे-धीरे वह सब कट जाएगा।

प्रश्नः फिर तो वह हर वक्त, हर टाइम रह सकता है उसी तरीके से!

बिल्कुल।

प्रश्नः फिर तो वह चीज ही दूसरी हो गई!

इधर मैं सोच रहा हूं कि एक थोड़े से लोगों का जो कैंप हो वह ध्यान का कैंप न होकर असंग साधना के लिए हो। उसमें पांच दिन, सात दिन असंग भाव में ही जीने का; हर क्रिया करते हुए असंग भाव में ही जीने का।

प्रश्नः असंग का क्या अर्थ है कि किसी को...

किसी चीज के संग नहीं हैं हम। साथ तो हैं--जैसे हम यहां बैठे हैं, आप सब मेरे साथ बैठे हैं, लेकिन फिर भी मैं अकेला हूं और आप भी अकेले हैं। दिख रहे हैं साथ, लेकिन साथ कौन है किसके? पत्नी है, बच्चा है, मां है, बाप है, सब हैं, सब साथ हैं, लेकिन फिर भी अंततः आप अकेले हैं। इसी भाव को गहरा करने की बात है। हर स्थिति में, हर स्थिति में। धन भी है पास में तो वह हमारे बाहर है।

प्रश्नः वह आपने जो सूत्र कहे हैं कि जो आदमी भागता है वह जैसे संन्यासी लोग भागते हैं या इत्यादि; भागना नहीं है। असमर्थता। परंतु इसमें एक बात है जरा निर्णय करने की है कि मनुष्य अगर यही ये घर के झंझट, जंजाल और...

नहीं, कोई भागने की जरूरत नहीं है। इसको झंझट और जंजाल कहने में ही भूल है।

प्रश्नः मैं कहता हूं झंझट नहीं कहते, यह एक काम है, आवश्यक काम है। हम अगर यह काम करते हैं तो उसमें हमारा मन जो है, कोई ऐसी छोटी सी बात से डिस्टर्ब होता है और ऊपर और नीचे, स्ट्रगल में रहता है...

हां, होने दें। वह जो परेशानी हमारी है वह परेशानी डिस्टर्बेंस नहीं है। उस डिस्टर्बेंस को ही हम मैं हूं ऐसा मान लेते हैं तो हम परेशान होते हैं। डिस्टर्बेंस तो होगा। और आप सोचते हैं संन्यासी को नहीं होगा? भाग जाए कहीं भी, सब जगह होगा। अभी-अभी मैं बता रहा था न निर्मल जी का! मुझे अमृतसर में पता चला कि किसी के पास रुपये जमा किए होंगे आश्रम के, उसने इनकार कर दिया, हार्ट-अटैक हो गया।

आप जाओगे कहां? मुश्किल यह है कि जाओगे कहां? भाग कर आप कहीं भी जाओगे, डिस्टर्बेंस तो ऐसी चीजें हैं--समझ लो कि जैन मुनि हो गए--अब वह नियम लेकर निकला है कि फलां घर में ऐसा होगा तो मैं भोजन करूंगा। अब वह उस घर के सामने आया, वैसा नहीं हुआ, डिस्टर्बेंस हो गई। फिर दूसरे घर के सामने गया, उधर भी नहीं मिला, फिर डिस्टर्बेंस हो गई। आपके घर खाना खाने बैठा है और किसी बच्चे ने पेशाब कर दिया, और वह खाना छोड़ देगा, क्योंकि डिस्टर्बेंस हो गई।

डिस्टर्बेंस तो मेरा कहना यह है कि जिंदगी का लक्षण है, जिंदगी का लक्षण है।

प्रश्नः यानी आपकी यह बात का मतलब समझ में आया है कि आपकी नई आत्मा यही है, मैं नहीं कर रहा, यह हो रहा। बस असली बात।

हमारे चारों तरफ डिस्टर्बेंस होते ही रहेंगे, क्योंकि हम कहीं भी जाएं वहीं संसार है।

प्रश्नः वह नाटक है।

वह नाटक है। इस नाटक को नाटक भाव से ही जीने का मजा है। तब आप इसको पूरी तरह जीते हैं--न कोई भय है, न कोई चिंता है। और भीतर आप जानते हैं कि एक अभिनय हो रहा है। यह पत्नी है, तो इससे अभिनय कर रहे हैं; यह बेटा है, तो इससे अभिनय कर रहे हैं; यह दुकान है, तो इससे अभिनय कर रहे हैं। और ये भी सब अभिनय कर रहे हैं। दोनों बातें ध्यान में रखना है।

प्रश्नः अभिनय का क्या अर्थ है?

एक्टिंग, नाटक। ये भी एक्टिंग ही कर रहे हैं।

प्रश्नः वे भी एक्टिंग कर रहे हैं!

तो फिर उनकी बात से भी हमको दुख नहीं होता। एक आदमी गाली दे रहा है, तो हम जानते हैं कि वह एक्टिंग का हिस्सा है। जब हम अपने भीतर जानते हैं कि हम असंग हैं, तो हमको जानना चाहिए कि सब असंग हैं। तो उस स्थिति में चित्त तो शांत रहेगा। हर अशांति में भी शांत रहेगा।

और जब तक यह कला न सीखी तब तक कहां भाग कर जाओगे? उससे कुछ होने वाला नहीं है। यानी यहां बच्चे शोरगुल कर रहे हैं, जंगल में बैठ जाओगे तो पक्षी

शोरगुल करेंगे और डिस्टर्बेंस करेंगे। जिंदगी तो सब तरफ मौजूद है और सब तरह से मौजूद है। अभी आपके पास बड़ा मकान है, आपको इसकी इतनी चिंता है; एक संन्यासी को अपनी लंगोटी की इतनी ही चिंता रहती है कि यह कहीं चोरी न चली जाए।

अभी मैं, एक दिन ऐसा हुआ, जबलपुर से मैं बैठा तो किसी संन्यासी को कुछ लोगों ने जबलपुर से छोड़ा। बड़े भक्त मालूम होते थे उनके, कहीं के बाहर के संन्यासी होंगे। एक फट्टा बांधे हुए थे। फट्टा होता है न! यह आप क्या कहते हैं, बारदाना कहते हैं न--बोरा, टाट। एक टाट ऐसा बांधे हुए हैं, एक टाट ओढ़े हुए हैं, दो टाट और साथ में एक टोकरी में रखे हुए हैं। कुछ फल वगैरह रखे हुए हैं। फर्स्ट क्लास में मेरे साथ में थे। बीना मैं आ रहा था। हम दोनों ही हैं। उन्होंने मुझसे पूछा कि बीना कब आएगा? मैंने कहा, बीना सुबह साढ़े छह, सात बजे आएगा। और यह गाड़ी बीना पर ही खतम हो जाती है, इसलिए आप निश्चिंत सोएं, बीना सुबह आने वाला है।

मैं सो गया। तो मैंने उनको देखा कि कुछ भक्तगण उनको दस-पचास रुपये भेंट कर गए हैं, वे उस टोकरी में रखे थे, उन्होंने देखा कि मैं सो गया, जल्दी से वे रुपये निकाल कर गिने। जल्दी से वे रुपये गिने, मेरी तरफ देखते ही रहे कि कहीं मैं देख तो नहीं रहा हूं। रुपये गिन कर फिर उन्होंने टोकरी में रखे, फिर उनको निकाले और फिर एक फट्टे में लपेट कर सिर के नीचे रख लिए। एक फट्टी सिर के नीचे रख ली, एक ओढ़ ली, एक बिछा कर सो गए।

दो घंटे बाद मैंने देखा कि वे दरवाजा खोल कर किसी से पूछ रहे हैं कि बीना कब आएगा? तो मैंने उनसे कहा कि मैंने आपको कहा है कि बीना सात बजे आएगा और यह गाड़ी वहीं खतम हो जाएगी। इसलिए आप बिल्कुल निश्चिंत सो जाएं। रात भर जग-जग कर पूछिएगा तो मुझे भी नहीं सोने देंगे, आप भी नहीं सो पाएंगे।

मैंने देखा कि फिर घंटे के बाद वह आदमी फिर पूछ रहा है किसी से कि बीना कब आएगा? अब उसके पास कुछ भी नहीं है, लेकिन माइंड की डिस्टर्बेंस है।

फिर मजा हुआ, बीना पर मैंने देखा, वह है फट्टी रखे हुए--तो साढ़े छह बजे के करीब वह उठा, हाथ में लेकर आईने के सामने खड़े होकर फट्टा बांध रहा है। एक दफा खोलता है, दूसरी दफा बांधता है। वह उसी शौक से बांध रहा है जैसे कोई टाई बांध रहा हो। उसमें कोई फर्क नहीं है। जैसे कोई टाई बांध कर तैयारी कर रहा हो। और वह एक दफा बांधता है, फिर वह ठीक नहीं जंचता उसको, फिर उसको दूसरी दफे बांधता है। फिर सब ओढ़-आढ़ कर फिर आईने में देखता है।

अब मेरा कहना यह है कि टाई मत बांधो, फुल पैंट मत पहनो; तुम जो भी पहनोगे, तुम्हारा माइंड तो वही है, तुम उसके साथ वही करोगे। देखने वाले को लगेगा कि कितना बड़ा त्यागी है! लेकिन भीतर का दिमाग तो वही का वही है। तो फिर मेरा कहना है कि जब यही मामला है तो टाई और फट्टे की बदलाहट की चिंता मत करो। टाई बांधो, उसको भी अभिनय समझो; फट्टा बांधो, उसको भी अभिनय समझो। फिर कुछ भी करो, उसको अत्यंत ज्यादा मूल्य मत दो।

इसलिए सिर्फ चीजें बाहर से बदलने का उतना सवाल नहीं है, भीतर आपकी बदलाहट का है। और भीतरी बदलाहट का एक ही मतलब है कि जो हम कर रहे हैं या तो हम उसको समझ लें कि हम ही कर रहे हैं, तो फिर दुख होगा। और या फिर यह समझ लें कि चीजें हो रही हैं, इतना बड़ा जगत है, इसमें हो रही हैं। हम भी एक खेलने वाले हैं, जैसे लाखों-करोड़ों खेलने वाले हैं। यह खेल चल रहा है इसको...। यह भाव गहरा होता चला जाए तो सब स्थितियों में रहते हुए मुक्ति संभव है। और मेरा कहना है, इसी तरह मुक्ति संभव है, नहीं तो मुक्ति संभव नहीं है।

प्रश्नः मुक्ति का आशय ही यह हुआ कि पूर्ण सजगता, पूर्ण असंग का भाव।

पूर्ण सजगता और पूर्ण असंग का भाव!

प्रश्नः पूर्ण सजग हो गया और असंग का भाव हो गया पूर्ण, यही तो सारी चीज है। जो सारे जगत के बीच में... इसको जीवन-मुक्त कह रहा है, वह वही हिसाब है। ... जैसे कमल कीचड़ में है।

और नहीं तो उलटी परेशानियां होती हैं। बस उसी भाव में। और नहीं तो आप काम भी कर रहे हैं और दुखी हो रहे हैं कि यह काम मुझे दुख दे रहा है। काम दुख नहीं दे रहा आपको, आपका मन दुख दे रहा है। तो इधर काम को छोड़ो, यह करो। और काम को छोड़ कर मन तो वही रहेगा। तो कुछ तो करोगे आप जीओगे जब तक। वह वहां दुख देगा। वह पीछे जारी रहेगा और असली बात आप करोगे नहीं। असली बात यह है कि काम और आपके बीच में फासला हो जाए।

प्रश्नः बिल्कुल ठीक। अब तो बिल्कुल क्लियर सब दिखाई दे रहा है।

तो उस दशा में ही, बस ये विचार आएं, कुछ भी आएं, सब उसी भाव से। विचार सर्वथा जाएं या न जाएं, हमें चिंता नहीं लेनी है। वे जाएंगे। अंदर तो यही रखना है कि ठीक है, आते हैं तो आते हैं, नहीं आते तो नहीं आते। जब नहीं आते हैं तब भी हमें प्रसन्न नहीं होना है। जब आते हैं तब भी हमें दुखी नहीं होना है। जब नहीं आते तब हमें जानना है कि अभी नहीं आ रहे हैं और जब आते हैं तब जानना है कि आ रहे हैं। और दोनों हालत में हमें असंग भाव रखना है। आओ तो ठीक है, न आओ तो ठीक है।

प्रश्नः अभी देखो सारी चीज ही... सारी चीज ही उसी पर टिकी हुई है, वह सारी चीज ही बदल गई है।

असंग के आधार पर रुकी हुई समझो। सारी बात को ही वहां अकेले रहना है, यानी ध्यान की थोड़ी सी साधना के बाद में असंग की ही साधना करनी चाहिए। जो मुझे समझने लगा उससे फिर असंग की ही बात कहनी है। जो नहीं समझता है उसको एकदम से कहने का कुछ मतलब नहीं, उसकी समझ के बाहर है। तो असंग की ही दृष्टि को जारी रखें। और यह तो मेरे ख्याल में है, जब भी जो भी जरूरत होगी वह मैं करूंगा। उसकी आप चिंता न करें, उसकी चिंता ही न करें, वह बिल्कुल मेरे ख्याल में है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

हां, मैं दो बातें, एक तो मेरे ख्याल में एक महावीर की डायरी लिखने का ख्याल है। महावीर की ही तरफ से, जैसे महावीर अपनी डायरी लिख रहे हों।

प्रश्नः मतलब यह है कि उनके ऊपर प्रेशर से उनके एक सेंटेंसेस बना लिए।

नहीं-नहीं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। जैसे महावीर आज इस गांव में आए, और वे अपनी डायरी भरते हैं--आज के दिन क्या हुआ, कौन मिला, किससे क्या बातें कीं, क्या मैंने कहा, क्या मेरे भाव की दशा रही। वे अपनी डायरी भर रहे हैं। उनकी तरफ से उनकी डायरी भरनी है। तो वह बड़ी काम की बात है और वह बहुत गहरी बात हो जाएगी। और वह उपद्रव भी काफी कर देगी, और काफी चर्चा का कारण भी बनेगी।

प्रश्नः वह तो एक नावेल तरीका है।

नावेल की तरह होगा, लेकिन उसके बहुत परिणाम हो सकते हैं। एक तो वह कर देना है। और एक महावीर के विचारों पर, उनके जीवन पर मेरी जो भी दृष्टि है सब चीजों पर...

प्रश्नः बिल्कुल, उनके जन्म पर, बाल्य अवस्था से, उनकी सारी चीज...

तो उसमें असल में वह तब ठीक बन पाए... यह अपना दयानंद है, यह जैन-दर्शन पर कुछ अध्ययन किया है, तो इसको ऐसा कहें कि यह कुछ क्वेश्चन तैयार कर ले, एक क्वेश्चनेअर तैयार कर ले।

(प्रश्न का ध्वनि -मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

क्योंकि मैं इधर आऊं या उधर, दोनों हालत में क्वेश्चनेअर तैयार हो तो सुविधा पड़ेगी। क्वेश्चनेअर ऐसा तैयार करें कि वह महावीर की पूरी जीवन की हर चीज पर क्वेश्चंस हो जाएं। चाहे दो सौ क्वेश्चन, चाहे ढाई सौ, इसकी फिक्र नहीं। एक-एक प्वाइंट पर क्वेश्चन कर लें वे। और डिवीजन कर लें।

जैसे जन्म के संबंध में वे दो-तीन क्वेश्चन बना कर तैयार करें। बाल्यावस्था के संबंध में क्वेश्चन बना कर तैयार करें। उनके घर की आर्थिक अवस्था के संबंध में, फिर बाद के जीवन के संबंध में, फिर तपश्चर्या के संबंध में। उन सब पर क्वेश्चन तैयार कर लें। तो फिर मैं एक-एक क्वेश्चन पर डिटेल में रिकार्ड करवाता जाऊं। तो वह बहुत आसान हो जाएगा, व्यवस्थित हो जाएगा।

प्रश्नः सारा जीवन आ जाएगा!

हां, सारा जीवन आ जाएगा, सारी बात आ जाएगी। और बात करते वक्त भी जो क्वेश्चन बीच में उठते चले जाएं वे भी पूछते चले जाएंगे। तो वे कोई तीन-चार सौ, पांच सौ प्रश्न उठाएं अपने किस्म के।

प्रश्नः उसमें सारी चीज आ जाएगी।

उसमें सारी चीज आ जाएगी। तो उसको दयानंद को कहें--या किसी को, दयानंद को भी जानकारी हो उसकी तो बहुत अच्छा होगा--कि वह पूरे क्वेश्चन तैयार कर ले, पूरा जीवन देख डाले, महावीर पर सारा साहित्य देख डाले और उनके सारे सिद्धांत देख डाले और क्वेश्चन बना डाले। सब क्वेश्चंस बना डाले। और मैं जब क्वेश्चन का जवाब दूं तब भी आप बैठ कर सब क्वेश्चंस बनाते जाइए। जैसे ही वह जवाब पूरा हो, आप उसके संबंध में और क्वेश्चन पूछ डालिए। तो क्वेश्चन भी रिकार्ड हो जाएं और उनके जवाब भी रिकार्ड हो जाएं। तो उस किताब को क्वेश्चन-आंसर की शक्ल में तैयार करना है। क्वेश्चन... तो वे पूरे हों।

प्रश्नः और फिर वह डायरी भी छाप लें।

हां, वह डायरी तो अलग से मुझे लिखवानी पड़े, बनवानी पड़े। पर इसके बाद डायरी लिखवाने से ज्यादा आसान पड़े। क्योंकि मेरी नजर में भी सब साफ आ जाए न! यानी मेरी नजर में तो है, लेकिन फुरसत से बैठ कर मैं उसे व्यवस्थित करवाऊं--सिस्टेमेटिकली।

प्रश्नः जब ये तैयार हो जाएं क्वेश्चंस तो फिर मैं वे क्वेश्चंस आपको भेज दूं?

वे मुझे भेज दो। तो मैं एक नजर डाल लूं। कहीं कुछ थोड़ा-बहुत हेर-फेर या जो.ड़-तोड़ करना हो तो जोड़-तोड़ कर तैयार कर लूं।

प्रश्नः अच्छा वह टाइम निश्चित कब होगा?

हां, वह मैं देखता हूं। टाइम तो बरसात में ठीक रहेगा, बरसात में ठीक रहेगा। बरसात में आना भी चाहें... तब तक वे भी तो क्वेश्चन उनको तैयार कर लेने दें, तो जुलाई में या अगस्त में।

प्रश्नः पंद्रह-बीस दिन के लिए यदि कोई ऐसे स्थान पर।...

वह और भी अच्छा होगा। कहीं पर मकान में कहीं अच्छी जगह हो, वहां बैठें, और ज्यादा आनंददायक...

प्रश्नः एक आपके लिए भी, रेस्ट के लिए भी आपको ठीक रहे और... वह कोई ऐसी चिंता की बात नहीं।

वह अच्छा होगा, पंद्रह दिन, बीस दिन का निकाल लें समय।

प्रश्नः वहां भी मजा उतना ही हो जाएगा, इनके संपर्क में ज्ञान-वान बढ़ने... और जहां बहुत ज्यादा ऊंचाई पर न हो।...

तब तक क्वेश्चंस तैयार करवा दें।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

ऐसा जो आदमी है वह सरल चित्त नहीं है। इसकी बजाय तो वह आदमी सरल चित्त है जो कहता हैः वह मिठाई अच्छी लगती है, मैं खा लेता हूं।
सरलचित्तता बड़ी और बात है। यह आदमी बहुत जटिल चित्त है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

यह हमको लगता भर है। यह हमको, आप आदमियों के मन के इतने सूक्ष्म रहस्य के बाबत। आप अच्छा तेल डाल कर, अच्छा कपड़ा पहन कर क्यों निकलते हैं, कभी आपने सोचा?

प्रश्नः अपनी खुशी के लिए।

नहीं। आप अच्छा कपड़ा पहन कर निकलते हैं, तेल डालते हैं, शानदार ढंग से निकलते हैं, दूसरे आपसे प्रभावित होते हैं।

प्रश्नः वही बात हुई न!

न-न, वही बात नहीं हुई। दूसरे आपसे प्रभावित होते हैं, आपको अच्छा लगता है। दूसरे आपसे प्रभावित होते हैं। अगर आपसे दूसरे बिना तेल डाल कर निकलने से प्रभावित होने लगें, नंगे निकलने से प्रभावित होने लगें--तो आपका काम नंगे निकलने से, बिना तेल डालने से भी हो जाएगा। जो मन का काम है भीतरी, वह मन चाहता है--आदर, सम्मान, पद-प्रतिष्ठा। अगर तेल डालने से मिलती है तो तेल डाल लेता है, अगर नहीं तेल डालने से मिलने लगे तो नहीं तेल डालता है। अगर नंगे रहने से मिले तो नंगा भी खड़ा हो जाता है, अगर कपड़े पहनने से मिले तो कपड़े भी पहनता है।
हमारे बीच जो बहुत चालाक लोग हैं... आप उतने चालाक नहीं हैं जितने साधु-संन्यासी चालाक हैं। आप तेल डाल कर कितना आदर पाओगे? तेल डाल कर आप कितना आदर पाओगे? तेल डाल कर आप कितना आदर पाओगे। लेकिन बिना तेल डाल कर आप और भी ज्यादा पा सकते हो। तो अगर आप चालाक हो तो आप बड़ा मकान नहीं बनाओगे। आप कहोगे, मकान का मुझे क्या करना? मैं तो साधु हूं! बड़े मकान से मिलता क्या है आदमी को? आदर ही मिलता है, सम्मान ही मिलता है।

प्रश्नः और मन का सुकून।

मन का संतोष तो वह आदर पा रहा है, वहां भी मिल जाने वाला है। इससे ज्यादा मिल जाएगा। मन का संतोष तो जो है वह कोई गांधी जी को कम नहीं मिलता आपसे। ज्यादा मिलता है आपसे। और मजा यह है कि बड़े मकान बनाने वाला भी उसके पैर छूने आएगा जो झाड़ के नीचे पड़ा है।

प्रश्नः त्यागी!

हां। तो ऐसा जो त्याग है, यह त्याग कभी भी बदलता नहीं मन को; मन की बुनियादी आकांक्षाएं जारी रहती हैं। और उन्हीं को पूरा करने के लिए उसने यह रास्ता पकड़ा हुआ है, आपने यह रास्ता पकड़ा हुआ है। ये रास्ते फर्क हैं, मन की आकांक्षा वही की वही है। इसलिए मैं कहता हूं कि त्याग प्राथमिक नहीं हो सकता। होगा तो यह गड़बड़ होने वाली है।

प्रश्नः त्याग सेकेंडरी चीज है।

सेकेंडरी चीज है।

प्रश्नः अपने आप होगा।

और वह जब अपने आप होता है तब आपको पता ही नहीं होता। आपको अगर पता है कि मैं तेल नहीं डालता हूं, नहीं डाल सकता हूं, तो आप जटिल दिमाग के आदमी हैं, सरल आदमी नहीं हैं। सरल आदमी वह है कि तेल मिल गया तो डाल लिया और नहीं मिला तो उसने कहा ठीक है। या आपने कहा कि डाल लो, तो उसने कहा डाल ही लेते हैं। और आपने कहा कि मत डालो, तो उसने कहा कि अच्छा जाने दो।

सरल आदमी का मतलब यह है कि जिसका कोई आग्रह नहीं, जिद्द नहीं। अगर आपने उससे कहा कि मिठाई खा लो, तो मिठाई खा ली। और आपने कहा कि आज सब्जी है, तो सब्जी खा ली। वह भी आदमी जटिल है जो कहता है, पच्चीस तरह के भोजन होंगे तो मैं खाऊंगा। यह भी जटिल है। और जो कहता है, मैं तो एक ही तरह की सब्जी खाऊंगा, दूसरी सब्जी हटाओ यहां से, यह भी जटिल है।

सरल आदमी बहुत दूसरी तरह का आदमी है। सरलता जो है, सरलता का मतलब यह है कि कोई जिद्द नहीं, कोई आग्रह नहीं; जिंदगी जैसी है वह स्वीकार कर लेता है।

अब जैसे कि गांधी जी को अगर आप एक मखमल का कमीज पहना दो तो...

प्रश्नः भगवान महावीर स्वामी जी, जहां की कहते हैं जिसमें एक वाद-विवाद खड़ा होता है। वह यह कि भगवान के पात्र में मांस भी आया और उन्होंने सब मांस का भोजन किया। आ गया, इसलिए उन्होंने ऐसा किया। और उसको हम अगर दूसरी दृष्टि से समझें, तो वे इतने सरल थे कि उनको इन सारी चीजों का कुछ ध्यान ही नहीं था।

मांस के मामले में सरलता का सवाल नहीं हो सकता। मांस के मामले में सरलता का सवाल नहीं हो सकता।

प्रश्नः वह आपका और...

न, न, न। और बहुत दृष्टियां हैं न! और बहुत दृष्टियां हैं। ऐसी सरलता जो दूसरे को दुख दे पाती हो, सरलता नहीं है।

प्रश्नः किसी को मार कर...

हां, किसी को मार कर, ऐसी कैसी सरलता!

प्रश्नः किसी को आत्मा को दुख देकर...

नहीं-नहीं, यह सरलता नहीं हो सकती है। यह सरलता नहीं हो सकती है। सरलता का मतलब यह है कि जिससे किसी को दुख नहीं पहुंच रहा है। ऐसा कोई भी काम करने में उस आदमी को कोई इनकार नहीं होगा।

अब जैसे आप यहां आए, और एक संन्यासी यहां आया, और सरल आदमी है, आपने उसको बढ़िया गद्दी लगा दी, तो वह लेट गया। अब गद्दी पर लेटने से किसी को बिल्कुल कोई दुख नहीं पहुंचा जा रहा है, न कोई पीड़ा हुई जा रही है। नहीं थी गद्दी तो जमीन पर लेट गया, क्योंकि उसका कोई गद्दी का आग्रह भी नहीं है।

प्रश्नः गद्दी के साथ उसका कोई संबंध नहीं।

कोई संबंध नहीं। सरलता का मतलब यह कि ऐसा आदमी सीधा-सरल होगा--जब तक कि किसी को कोई दुख ही पहुंचाने का कारण न बने। वह ऐसे काम में नहीं पड़ेगा।

लेकिन ये जिनको आप कहते हैं त्यागी और सरल, ये एक भी सरल नहीं हैं। ये अति जटिल लोग हैं, अति जटिल। और इनका दिमाग बहुत कांप्लेक्स है और बहुत कनिंग है। और यह पूरी कनिंगनेस का कैलकुलेशन है इनका जो कर रहे हैं पूरा का पूरा--यह खाना किसने बनाया, और यह कैसे बना, और इसको इसने छू दिया और फलाने ने छू दिया। यानी सब कनिंग है बात पूरी की पूरी।

प्रश्नः और जो हम लोग कहते हैं कि बढ़िया बनना चाहिए, यह भी होना चाहिए, यह भी होना चाहिए।

उससे ज्यादा सरल है आपका दिमाग। उनसे ज्यादा सरल हैं आप। क्योंकि आप बिल्कुल स्वाभाविक जो मन की इच्छा है वह कह रहे हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

आपके प्रति अगर प्रेम दिखाया तो महंगा पड़ेगा, क्योंकि मुझे कुछ खोना पड़ेगा। मुझे कुछ खोना पड़े आपके लिए। और पत्थर के प्रति दिखाऊं तो कुछ खोना-वोना नहीं है। उधर एक मुर्दा पत्थर बैठा हुआ है और मैं अपने घूम करके अपने घर वापस लौट आता हूं। जीवन के प्रति भाव जगना चाहिए, पत्थरों के प्रति नहीं। और जीवन के प्रति भाव जगेगा तो आपकी भावना ऊंची उठने वाली है। लेकिन हमने एक तरकीब निकाल ली है, जीवन से बचने के लिए मंदिर खड़ा किया हुआ है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

मैं बात करूंगा। मंदिर होना चाहिए। बिल्कुल, बिल्कुल...

प्रश्नः किसी को गाने में मजा आता है, कोई मंत्र, उसकी धुन...

हां, तो मजा ले, कौन मना करता है!

प्रश्नः वही है। और है नहीं कुछ भी।

न-न, पर वह गाने में ही मजा लें, धोखाधड़ी काहे के लिए करना! किसी को नाचने में मजा आता है तो खूब नाचे। महावीर को काहे को फंसाता है बीच में! उनकी मूर्ति रख कर काहे के लिए, उनको काहे के लिए ढोंग में डालना! तुम नाचो मजे से, कौन मना करता है? खूब आनंद उठाओ। तुम्हें केसर फेंकने में मजा आता है, केसर फेंको। तुम महावीर को काहे को फंसा रहे हो!

प्रश्नः तुम भगवान महावीर की आड़, भगवान की आड़ क्यों ले रहे हो।

मेरा कहना यह है कि चीजें साफ तो हों। मुझे खाने में मजा आता है तो खूब खाऊं, लेकिन भगवान का भोग लगा कर बहाना क्यों करूं?

रामकृष्ण के पास एक आदमी आता था। वह हमेशा काली का जब दिन आता, दशहरा आता, तो बड़ा भोज देता था और बड़ा जलसा मनाता था। और बड़े बकरे कटते थे और यह सब होता था। फिर वह आदमी बूढ़ा हो गया। तो रामकृष्ण ने उससे पूछा कि आजकल दशहरा नहीं मनाया जाता? आजकल क्या हुआ है, सब बंद हो गया! उसने कहा, अब दांत ही न रहे। तो रामकृष्ण ने कहा, मूरख, जब दांतों के लिए बकरे कटवाता था तो काली को काहे के लिए फंसाता था! तो सीधा ईमानदार तो हो कम से कम। तुझे बकरा खाना है, बकरा खा। लेकिन काली के सामने बकरा काट कर खाने में तू होशियारी कर रहा है। तू धोखा दे रहा है--अपने को भी, दूसरों को भी। मतलब तो सिर्फ

बकरा खाने से है और यह काली को निमित्त बना कर, तू बकरा खाने की जो पीड़ा थी, उससे भी बच रहा है। क्योंकि हम तो यह भगवान के लिए चढ़ा रहे हैं, हम थोड़े ही खा रहे हैं!

तो मेरा कहना यह है कि हम जिंदगी को जैसा भी जीना चाहें जीएं। मैं तो जिंदगी के जीने के विरोध में नहीं हूं। जो आपको अच्छा लगता है आप करें। लेकिन सीधा-साफ करें। और यह धोखाधड़ी की तरकीबें न निकालें। अगर मुझे रेशमी कपड़े पहनने हैं तो मैं रेशमी कपड़े पहनूं, लेकिन मैं कहता हूं कि मैं भगवान का भक्त हूं इसलिए रेशमी कपड़े पहने हुए हूं।

अब कल एक सज्जन मिलने आए मुझसे, वहां तो अमृतसर में तो कई तमगे, कोट पहने हुए हैं और--एक कोई मठ के मठाधीश थे सरदार। वह आया। इधर एक वह क्या कहते हैं इसको बिल्कुल चांदी से भरा हुआ कोट, पगड़ी-वगड़ी, चांदी-सितारे उस पर गुंथी हुई और दस-पांच उनके भक्तगण, वे मिलने आए। तो मैंने पूछा, ये काहे के लिए पहने हुए हैं? यह सब क्या है? उन्होंने कहा, यह तो, भगवान के दरबार में साधारण कपड़ों में थोड़े ही जा सकते हैं।

अब तुम्हें जो पहनना है पहनो, कौन मना करता है! लेकिन यह तरकीब, यह कनिंगनेस क्यों? यह चालाकी क्यों? तुम जाओ भगवान के पास।

इधर अरविंद के आश्रम में माता जी हैं। वह तो मखमल और रेशम से नीचे कुछ पहनती नहीं हैं। कोई मनाही नहीं है; जिसको जो मौज आए पहने। मैं तो कहता नहीं कि बुरा है पहनना, जो मरजी पहनो। लेकिन अरविंद ने क्या कहा, अरविंद से पूछा गया कि माता जी इतने कीमती कपड़े क्यों पहनती हैं? तो उन्होंने कहा कि ईश्वर के दरबार में साधारण कपड़े नहीं चलते। ईश्वर के दरबार में साधारण... ईश्वर का मतलबः ऐश्वर्य। वहां तो वैभव का। तो माता जी तो वहां पहुंच चुकी हैं जहां ईश्वर हैं। वहां तो सब वैभव ही वैभव है। वे साधारण कपड़े वहां नहीं चलते।

अब इसको मैं कहता हूं कि यह धोखाधड़ी मत चलाओ। मैं नहीं कहता। मैं अगर यह कहूं कि यह रेशमी कपड़ा पहनना बुरा है, तो गलती बात है। मैं नहीं कहता। मेरी मौज है जो मैं चाहूं--खादी पहनूं, चाहे रेशमी कपड़े पहनूं, दुनिया में कोई कुछ कहने का सवाल नहीं रखता। लेकिन मैं कहूं कि मैं ये कपड़े इसलिए पहना हूं कि ये भगवान...

प्रश्नः हिपोक्रेसी आ गई।

माता जी कोई साधारण महिला थोड़े ही हैं, अरविंद ने कहा। इसलिए साधारण कपड़े नहीं पहन सकतीं।

अब बड़ा मजा है। साधारण कपड़ों से कोई साधारण आदमी हो जाता है? या असाधारण कपड़ों से कोई असाधारण आदमी हो जाता है?

तो अरविंद जैसे समझदार आदमी इस तरह की बेईमानी की बातें करता है, सब खराब काम है। तो इसलिए मेरी सबसे झंझट हो गई है। और झंझट का मामला यह हो गया है कि अब वह बड़ा मुश्किल होता जाता है मामला, उसको कैसे...

प्रश्नः पब्लिक को एजुकेट करना होगा। और उसके लिए इंतजाम करना होगा। बिना उसके इंतजाम के कुछ भी नहीं हो सकता। अभी तक इंतजाम कुछ नहीं है...

कुछ भी है ही नहीं इंतजाम, लाला जी, अभी तो बस बिना इंतजाम के बात चल रही है। वह आप सबको करना पड़ेगा, आपके मन में उठ रहा है तो हो ही जाएगा।

प्रश्नः जब तक पब्लिक एजुकेट नहीं होगी, तब तक सारी अंधेरे में है।

शंकराचार्य अभी पटना आए। पहले वह चला आ रहा है सिंहासन सोने का। चार आदमी पहले... सारी मीटिंग डिस्टर्ब हो रही है... सोने का सिंहासन आकर लगेगा पहले।

अब मैं नहीं कहता, मजे से तोले सोने के सिंहासन से, कौन किसको रोक सकता है। सोने का सिंहासन लगेगा, उस पर फिर वे अपने खड़ाऊं सहित चढ़ गए उस पर सिंहासन पर फटफटाते हुए। पूछो तो वे कहेंगे कि वे शंकराचार्य हैं, इसलिए

सोने का सिंहासन है। वे साधारण जगह पर कैसे बैठ सकते हैं। अब जिसको जहां बैठना हो बैठे, कोई मामला नहीं है। लेकिन यह आड़! और फिर होता क्या है, आड़ की वजह से आप फिर कुछ कह भी नहीं सकते। और नहीं तो आप इस आदमी को बिल्कुल बुद्धू कहोगे कि यह आदमी दस हजार आदमी बैठे हैं वहां अपना सिंहासन लिए साथ में चला आ रहा है। चार आदमी आगे सिंहासन ला रहे हैं, पीछे वे चले आ रहे हैं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

फौरन ! वे तो पहले नपवा लेते हैं कुर्सियां।

प्रश्नः क्योंकि उनका सिंहासन सारे में ऊंचा होना चाहिए।

चार इंच ऊंचा, इससे कम नहीं चाहिए। खड़े हो जाएंगे, बैठेंगे नहीं। और मजा यह है कि तुम यह कहो मेरे चार इंच नीचा बैठना है तो कोई हर्जा नहीं है। वे कहते हैं कि मेरा सवाल नहीं है, शंकराचार्य की इज्जत का सवाल है। और शंकराचार्य की आड़ में अपने अहंकार को तृप्त करने की फिकर करोगे।

कलकत्ते में पिछली बार कोई चार साल पहले दूगड़ जी जिंदा थे। तो मैं गया था तो एक उसी वक्त उनके यहां ठहरा था राजीव सिंह जी के वहां, उनके यहां ठहरा था। तो उस समय शायद वहां तुलसी जी भी थे। मैं गया उसके पहले यह घटना हो गई थी। सुशील जी भी वहां थे, और भी लोग थे।

तो दूगड़ जी ने मुझे बताया कि एक जलसा किया था जिसमें सबको एक मंच पर लाया जाए। तो सबके आदमी पूछने आए कि हमारे आचार्य को, हमारे गुरु को बिठाइएगा कहां, पहले यह पक्का हो जाए। क्योंकि वे किसी से नीचे नहीं बैठ सकते। और सभी किसी से नीचे नहीं बैठ सकते, तो मुश्किल हो गया मंच बनाओ कैसे ! कोई दूसरा किसी से नीचे नहीं बैठ सकता। आखिर यह हुआ कि वह नहीं हुआ, वे इकट्ठे नहीं बैठ सके।

इधर मैं इलाहाबाद पिछले एक... इलाहाबाद में एक बाबा हैं--सच्चा बाबा। उन्होंने एक जलसा किया हुआ था। तो मुझे भी बुला लिया। तो उन्होंने साठ लोगों के बैठने के लिए बड़ा मंच बनाया। साठ लोगों को बुलाया था। लेकिन एक-एक को बैठ कर भाषण देना पड़ा, साठ बैठ नहीं सके साथ। क्योंकि कौन ऊंचा, कौन नीचे ! और साथ कोई बैठने को राजी नहीं था--हम उसके साथ कैसे बैठ सकते हैं? हमारा चार इंच ऊंचा चाहिए फलां आदमी से!

अभी इस पुरी के सम्मेलन में बाकी जगतगुरु नहीं आए, बाकी शंकराचार्य नहीं आए। वह सिर्फ इसलिए कि वह भी झंझट का मामला है कि कुछ शंकराचार्य कहते हैं आसन दूसरे से ऊंचा दो। और बराबर के लिए तो कोई राजी है नहीं किसी से। इसलिए एक जगह एक ही शंकराचार्य आ सकता है, दूसरा आ नहीं सकता। क्योंकि वह अपना बड़ा सिंहासन लगाए तो झगड़ा खड़ा हो जाए फौरन।

इतनी गंवारी है, इतने स्टुपिड माइंड इकट्ठे हो गए! और हम सबको बरदाश्त किए चले जा रहे हैं। सबको बरदाश्त किए चले जा रहे हैं।

प्रश्नः कारण है, हम ही लोग तो कराने वाले हैं। असल बात तो यही है कि हम ही लोग तो कराने वाले हैं। सारी चीज तो इसीलिए हो ही रही है।

बस अहंकार के सिवाय कुछ भी नहीं है। और अहंकार को धार्मिक आड़ में छिपा रहे हैं, यह और खतरनाक है। और बच्चों जैसी बुद्धि है। जैसे छोटा बच्चा कुर्सी पर खड़ा हो जाए और कहे कि हम आपसे बड़े हैं। छोटे बच्चे करते हैं न--कुर्सी पर खड़े हो गए कि पिताजी हम तुमसे बड़े हैं, देखो हम आपसे ऊंचे हैं।

तो इसको हम मानते हैं कि यह बच्चा है, दिमाग नहीं है इसके पास। लेकिन ये भी बच्चे हैं। ये चार इंच ऊंचे बैठ गए तो ये बड़े हो गए। चाइल्डिश जिसको कहना चाहिए। वह दिमाग है बचपने का। लेकिन ये हमारे गुरु हैं, नेता हैं, संत हैं। यह सब मजा है सबका। ये सब बहुत मजे की बातें हैं।

प्रश्नः यही तो चीज है। और इसी चीज ने तो यह सारी चीज इस तरह चला दी है कि अपने आप सोचने वाली बात खत्म हो चुकी है।

मैंने बताया था न आपको, मोरार जी वाला मामला तो बताया था न तुलसी जी के साथ जो हुआ, बहुत मजेदार।

प्रश्नः वह क्या बात हुई थी?

कोई हो गए आठ साल होते होंगे। कोई आठ साल पहले राजसमंद में तुलसी जी का जलसा था। तो मुझे भी बुलाया था, मोरार जी भी थे, सुखाड़िया थे, और दस-पच्चीस लोग बुलाए थे उन्होंने। तो सुबह एक अंतरंग गोष्ठी रखी, जो खास लोग आए थे उनके लिए। तो तुलसी जी तो बड़े तख्त पर चढ़ कर बैठ गए और हम सबको तो नीचे बैठा दिया। तो और किसी को तो उतना ख्याल नहीं हुआ, मोरार जी को कष्ट हो गया। वे तब मिनिस्टरी में थे मोरार जी उस समय। उनको कष्ट हो गया एकदम भारी कि उनको नीचे बिठा दिया। तो उन्होंने बैठते ही से यह कहा कि अंतरंग गोष्ठी शुरू होती है, उसके पहले मैं एक प्रश्न खड़ा करता हूं, उसी प्रश्न से चर्चा शुरू होनी चाहिए। तो तुलसी जी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा कि हां-हां, पूछिए। उनको क्या पता कि वे क्या पूछेंगे।

उन्होंने यह पूछा कि महाराज आप ऊपर चढ़े हुए क्यों बैठे हुए हैं? क्योंकि यह तो अंतरंग गोष्ठी है। हम सब बातचीत करने इकट्ठे हुए हैं। अगर आप भाषण देने वाले होते तो ठीक था कि आप ऊपर बैठ कर बोलते, हम नीचे बैठ कर सुनते। लेकिन यहां तो बातचीत के लिए आए हुए हैं, अंतरंग गोष्ठी है यह, यहां कोई सौ-पचास आदमी भी नहीं हैं कि आप ऊपर बैठें। दस-पच्चीस आदमी हैं, नीचे बैठ कर शांति से बात होती, साथ में बात होती, आप ऊपर क्यों चढ़ कर बैठे हैं? इसका उत्तर चाहिए। और मैंने आपको हाथ जोड़ कर नमस्कार किया तो आपने हाथ नहीं जोड़े। तो मैं पूछना चाहता हूं कि क्या आप हाथ नहीं जोड़ सकते हैं? इसी से चर्चा शुरू होनी चाहिए।

तुलसी जी घबड़ा गए।

प्रश्नः छोड़ दी होगी उसी घड़ी।

नहीं, छोड़ने की हिम्मत भी नहीं। अरे यही तो! छोड़ भी दें तो भी समझो कि इस आदमी में हिम्मत है। वह भी हिम्मत हो तो नीचे उतर आएं, उतनी भी हिम्मत नहीं। और वे समझा भी नहीं सकें। और कोई दूसरा आदमी हो तो टाल भी दें, मोरार जी को टालना भी मुश्किल। और मोरार जी नाराज हो जाएं, यह भी न चाहें। क्योंकि खुशामद के लिए तो बुलाया हुआ है। तो दूसरे साधु ने, उनके आचार्य तुलसी के बड़े भाई हैं, वे भी साधु हैं, वे नीचे थे। तो उन्होंने कहा कि मैं आपको कहता हूं कि यह हमारी परंपरा की बात है कि आचार्य को हम ऊपर बिठालते हैं। वे हमारे गुरु हैं, गुरु को हम ऊपर बिठालते हैं।

तो मोरार जी ने कहा, आपके गुरु होंगे, लेकिन हमारे तो गुरु नहीं हैं। और इधर तो हमसे मिलने को बुलाया हुआ है। और परंपरा की बात है, तो मैंने तो सुना है कि आप अपने को क्रांतिकारी संत बताते हैं, तो फिर परंपरा की क्या बात है? अगर गलत है परंपरा, तोड़िए। और ठीक है तो मुझे समझाइए कि इसमें कौन सी ठीक बात है।

फिर और झंझट हो गई। फिर मैंने कहा कि अगर मोरार जी मुझसे उत्तर लेना चाहें तो मैं उनको उत्तर देना चाहूंगा, और तुलसी जी, वे दोनों राजी हों तो मैं बोलूं, नहीं तो मुझे कोई मतलब नहीं है, क्योंकि मुझसे कोई बात नहीं हुई है।

तो तुलसी जी ने कहा कि हां-हां, आप कहिए। और मोरार जी ने कहा, मैं उत्तर चाहता हूं। तो मैंने कहा कि पहली तो बात यह है कि आपको सबसे पहले यह बात क्यों दिखाई पड़ी कि वे ऊपर तख्त पर बैठे हुए हैं? आपको चोट लगी है नीचे बैठने में। और जब तक आपको नीचे बैठने में चोट लगती रहेगी तब तक किसी को ऊपर बैठने में आनंद आता रहेगा, इसमें कोई भेद नहीं है। ये तो दोनों जुड़ी बातें हैं। तो मैंने कहा, आप पूछ रहे हैं कि आप क्यों ऊपर बैठे हैं, आप भलीभांति जानते हैं। आपको नीचे बैठने में क्यों चोट लग रही है, वही उनके ऊपर बैठने का मजा है। इसमें किसी से पूछने की जरूरत नहीं है।

और मैंने कहा, अगर आपको भी तख्त पर बिठाया गया होता तो मैं निश्चित कह सकता हूं कि आपने यह प्रश्न नहीं उठाया होता। और ऐसे मौके और भी आए होंगे, जब आप तख्त पर बैठे रहे होंगे तब आपने नहीं सोचा होगा कि मैं तख्त पर क्यों बैठा हूं, दूसरे लोग नीचे क्यों बैठे हैं। तो मैंने कहा कि इस बात को ठीक से समझ लीजिए कि जो बात आपका दुख बन रही है वही उनका सुख बन रही है। इसमें कोई ज्यादा झंझट का मामला नहीं है। दोनों की आपकी बीमारी एक ही है।

प्रश्नः चुप कर गए?

एकदम चुप कर गए। पर मोरार जी वैसे ज्यादा ईमानदार लगे मुझे तुलसी जी की बजाय। क्योंकि मोरार जी ने कहा कि जो आप कहते हैं वह ठीक है। मैं इस पर सोचूंगा।

मगर सबके दिमाग बचकाने हैं। सबके दिमाग बचकाने हैं। मैंने कहा कि यह फिजूल की बात है। बैठे हो तो बैठे रहो। छिपकली ऊपर चढ़ गई... अपना बैठे रहो। आपको इससे क्या मतलब है? और अगर हम जो पच्चीस आदमी नीचे बैठे हैं, अगर किसी के मन को पीड़ा न पहुंचती हो नीचे बैठने से, तो बैठो जहां तुम्हें बैठना है। और तब इनको भी ऊपर बैठने में बुद्धूपन मालूम पड़ेगा कि मैं कैसा बुद्धू आदमी हूं कि ऊपर बैठा हुआ हूं! लेकिन आपको पीड़ा पहुंचती है, इनको सुख पहुंचता है उससे।

प्रश्नः वह अहंकार आ गया।

अहंकार का मजा आ जाता है और यह सब चलता है। इसलिए मोरार जी उसी दिन से नाराज हैं, तुलसी जी भी नाराज हैं। यानी मुसीबत तो यह है कि सच कहना मतलब लोगों को नाराज करना है। झूठ कहो तो सब खुश हैं। झूठ कहो तो सब खुश हैं।

प्रश्नः सही आदमी तो सच कहने पर खुश हो जाते हैं।

कुछ हिम्मतवर लोग। हिम्मतवर लोग।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो पुरोहित, पुरोहित का मतलब यह है कि वैसा आदमी जो इन सब बातों के उत्तर कुछ देता है। जानता कुछ भी नहीं है।

प्रश्नः जानता वह भी नहीं है?

जानने-वानने का सवाल नहीं है। जानने-वानने का सवाल नहीं है। किसने दुनिया बनाई? तो वह आदमी पुरोहित बन गया जिसने कहा कि भगवान ने बनाई। और यह मालिक बन कर बैठ गया, क्योंकि यह सबसे बड़ा ज्ञानी हो गया। ज्ञान ताकत है।

अब इसका जो ज्ञान था वह ऐसा ज्ञान था कि अगर वह फैल जाए तो इसकी पोल खुल जाए। ज्ञान फैल जाए तो इसकी पोल खुल जाए। क्योंकि वह असली ज्ञान तो था नहीं, सूडो नालेज थी।

साइंस का जो ज्ञान है वह ऐसा ज्ञान है कि जितना फैले साइंस उतनी बढ़ती है। क्योंकि वह कोई ज्ञान झूठा नहीं है, आप प्रयोग करके देख सकते हैं, परीक्षा कर सकते हैं। तो विज्ञान का ऐसा ज्ञान है कि उसको कोई भय नहीं है। लेकिन पुरोहित के पास जो ज्ञान था वह ऐसा था कि अगर वह सबको पता चल जाए तो सारी पोल खुल जाए उसकी। उसमें कोई दम तो थी नहीं। तो उसको सीक्रेट बना कर, गार्ड बना दिए गए कि वह सबको न मिल सके। सबको न मिल सके इसलिए सबको उसकी शिक्षा न दी जा सकी।

स्त्रियों को वर्जित कर दिया तो आधा समाज खंडित हो गया। उसको तो कोई शिक्षा का कारण नहीं रहा। और बड़े मजे की बात यह है कि यह बात पहले ही समझ में आ गई कि स्त्री पुरुष से ज्यादा अज्ञान की हालत में रही है, क्योंकि

उसको ज्ञान मिलने का मौका नहीं। और इसलिए स्त्री जो है पुरुष का माध्यम रही है शोषण का। और आज भी वही है। आज भी वह है तो साधु स्त्री की वजह से जिंदा है, पुरुष की वजह से तो मर चुका है। आज भी साधु और पुरोहित को जो जिंदा रखे हुए हैं वे आपकी स्त्रियां हैं। वे ही उनका कारण हैं जिलाए रखने का। और आप जो जाते हैं सो अपनी स्त्री के पीछे चले जाते हैं, और कुछ मामला नहीं है ज्यादा।

तो स्त्री को अज्ञान में रखना बहुत जरूरी था, वह अज्ञान में रहेगी तो ही वह पुरोहित के साथ रह सकती है। इसलिए स्त्रियों को शिक्षा वर्जित कर दी गई। उनको कोई शिक्षा न दी जाए। शूद्रों को वर्जित कर दिया शिक्षा से। क्योंकि शिक्षा जहां भी मिलती है वहीं क्रांति शुरू हो जाती है। तो गरीब को अगर शिक्षा मिलेगी तो... गरीब को शिक्षित करना खतरनाक है। गरीब अब चूंकि शिक्षित हो रहा है इसलिए गरीब रहेगा नहीं दुनिया में, अमीर को मिटा कर रहेगा। तो गरीब चूंकि जबरदस्ती गरीब बनाया गया है, वह भी अमीर हो सकता है, लेकिन वह हो नहीं सकेगा जब तक उसको शिक्षा नहीं मिले, इसलिए नीचे का जो वर्ग है गरीब का, शूद्र का, उसकी शिक्षा एकदम वर्जित कर दी गई।

तो समाज का आधा हिस्सा स्त्रियों का--शिक्षा से वर्जित कर दिया, वे शोषण का अड्डा बन गईं। वे हर तरह की बेवकूफियों की सहयोगी बन गईं। और जहां से दंगा हो सकता था समाज का--वह नीचे का, शूद्र का, जो मजदूर का, श्रमिक वर्ग था--उसको वर्जित कर दिया। उसको कोई शिक्षा नहीं मिली। शिक्षा नहीं मिलती तो ख्याल ही नहीं आता उसको कि हम हालत बदल सकते हैं। वह जैसा है वैसा स्वीकार कर लेता है।

फिर बच गए समाज के पास तीन वर्ग--एक व्यवसायी का वर्ग, एक बुद्धिमानों का वर्ग और एक क्षत्रियों का, वीरों का वर्ग। इन तीनों ने अपनी डिवीजन बांट ली, ताकि कोई झगड़ा-झंझट न हो। व्यापारी व्यापार करे, धन कमाए, वह धन से प्रतिष्ठा पाए। क्षत्रिय लड़े, जीते और शक्ति से प्रतिष्ठा पाए। और ब्राह्मण बुद्धिमत्ता का कार्य करे और बुद्धि से प्रतिष्ठा पाए।

अब यह भी जानने की बात है कि ब्राह्मण को सबसे ज्यादा आदर देने में भी कारण था। क्योंकि एक तो नियमतः ब्राह्मण था। लेकिन ये वैश्य और क्षत्रियों ने भी अनुभव किया कि ब्राह्मण को सबसे ज्यादा आदर क्यों मिले। क्योंकि यह बड़े मजे की बात है, जिस समाज में बुद्धिमान को सबसे ज्यादा आदर मिले उस समाज में कभी क्रांति नहीं होती। बुद्धिमान को सबसे ज्यादा आदर मिले उसमें कभी क्रांति नहीं होती। क्योंकि क्रांति की जो शुरुआत करने वाले लोग होते हैं वे बुद्धिमान होते हैं। इसलिए हिंदुस्तान में कोई क्रांति नहीं हो सकी, क्योंकि इंटलेक्चुअल को हमने सबसे ज्यादा आदर दिया।

प्रश्नः उनको ऊपर चढ़ा दिया।

उनको ऊपर चढ़ा दिया। हालांकि उनके पास पैसा-वैसा कुछ नहीं था, ब्राह्मण गरीब रहे। ब्राह्मणों के पास कुछ रहा नहीं, लेकिन आदर-सम्मान उनको सबसे ज्यादा रहा, राजा भी उनका पैर छुएगा। तो जब राजा उनका पैर छुएगा तो वे राजा की प्रशस्ति में गीत गाते रहेंगे, वे कभी राजा के खिलाफ बात नहीं करेंगे।

अभी रूस में भी वे यह कर रहे हैं। रूस में क्रांति नहीं हो सकती, क्योंकि रूस आपके सीक्रेट को समझ गया। रूस में इस वक्त लेखक, पत्रकार, बोलने वाला, विद्वान, विचारक, वैज्ञानिक, इनका सर्वाधिक आदर है। इसलिए रूस में क्रांति हो ही नहीं सकती।

प्रश्नः इस समय?

जिधर हो, वह सफल नहीं हो सकती क्रांति। क्योंकि क्रांति के जो बीज बोते हैं वे बुद्धिमान लोग होते हैं। और जब बुद्धिमान को आदर मिलता है, वे काहे के लिए क्रांति के बीज बोएं! सीक्रेट जो है, सीक्रेट जो है... वह क्रांति करेगा कौन? कोई बुद्धिहीन करता है? कोई व्यवसायी करता है? ये तो जो डिसकंटेंटेड इंटलेक्चुअल्स होते हैं, जिनके पास बुद्धि तो बहुत है और

असंतुष्ट हो गए, वे आग लगा देते हैं। एक बुद्धिमान आदमी को क्रोध में कर देना बहुत खतरनाक है। क्योंकि वह आग फैला देगा। वह शब्दों का मालिक है।

तो वे रूस में उन्नीस सौ सत्रह के बाद सबसे ज्यादा आदर इनको देते हैं। और किसी की चिंता नहीं है उनको। इस वक्त लेखक को इतना पैसा मिलता है रूस में, दुनिया में कहीं नहीं मिलता। ऐसी बढ़िया कोठियां और कारें, जिनका कोई हिसाब नहीं। बोलने वाला, लिखने वाला, ज्ञानी, इसको खूब आदर है। इसलिए वहां जरा सी भी क्रांति की बात नहीं उठ सकती।

ब्राह्मणों को सबसे ज्यादा आदर दे दिया, इसलिए हिंदुस्तान में क्रांति हुई नहीं पांच हजार साल से कोई। यह ब्राह्मण अगर गुस्से में भर जाए तो क्रांति करवा दे। और अंग्रेजों से यही भूल हो गई हिंदुस्तान में। हिंदुस्तान के इंटलेक्चुअल्स को अंग्रेजों ने अगर राजी कर लिया होता, हिंदुस्तान में कभी क्रांति नहीं होती। वही तो भूल हो गई। चूक गए बिल्कुल ही। हिंदुस्तान में जो बगावत हुई है, जो क्रांति हुई है, वह हुई किससे? कोई आपने क्रांति कर ली? वह हिंदुस्तान का जो इंटलेक्चुअल था वह राजी नहीं हुआ, उसको क्रोध आ गया, उसके अहंकार को तृप्ति नहीं मिली, नाराज हो गया वह, उसने गड़बड़ शुरू कर दी और उसने गड़बड़ फैला दी। अगर अंग्रेज हिंदुस्तान के थोड़े से बुद्धिमान लोगों को खूब सम्मान देते रहते, तो हिंदुस्तान में क्रांति-व्रांति नहीं होती। कभी क्रांति नहीं होती।

तो सोसायटी को क्रांति से बचाने के लिए बुद्धिमान को सबसे ज्यादा आदर देते रहे और तीनों ने डिवीजन कर लिया। क्षत्रिय को खूब सम्मान मिलेगा, क्योंकि राजा वही हो सकेगा। धनी को बहुत सम्मान मिलेगा, क्योंकि धनपति वही हो सकेगा। ब्राह्मणों को बहुत आदर मिलेगा, क्योंकि बुद्धिमान वही हो सकेगा। और इन तीनों में कोई कांफ्लिक्ट नहीं रखेगा। न क्षत्रिय को ब्राह्मण होने की जरूरत है और न ब्राह्मण को वैश्य होने की जरूरत है। और वह जो झगड़ा आप कहते हैं वशिष्ठ और विश्वामित्र का, कुल इतना ही झगड़ा है कि एक क्षत्रिय ब्राह्मण होने की कोशिश कर रहा है। जिसका निषेध है, यह नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह डिवीजन जो किया है उसमें गड़बड़ पैदा हो रही है।

यह जो महावीर और बुद्ध का जो झगड़ा है वह यही है। ये क्षत्रिय हैं और ब्राह्मण होने की कोशिश कर रहे हैं। महावीर और बुद्ध का जो झगड़ा है हिंदू समाज से वह यही है कि ये क्षत्रिय हैं और ब्राह्मण होने की कोशिश कर रहे हैं। यानी ये दावेदार बन रहे हैं कि हम भी ज्ञानी हैं। यह गलती बात है, ब्राह्मण के आप क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इसलिए ब्राह्मण दुश्मन हो गया कि यह बात नहीं हो सकती।

समझ रहे हैं न! यह जो डिवीजन ऑफ लेबर था, उसमें ये गड़बड़ करने वाले लोग हैं। क्योंकि ये हैं तो क्षत्रिय, लेकिन कहते हैं कि हम सर्वज्ञ हैं। तो आप ब्राह्मण होने का, ब्रह्मज्ञानी होने का दावा कर रहे हैं। क्योंकि ब्राह्मण का अपना मोनोपाली है, उसको आप एनक्रोच करते हैं। जब कि ब्राह्मण नहीं घुसता क्षत्रिय के उसमें। वह परशुराम ने की थी वह गड़बड़, वह झंझट खड़ी हो गई। कहीं गड़बड़ होती नहीं। कभी-कभी इक्के-दुक्के आदमी होते हैं, और-और दूसरे क्षेत्र में घुसने की कोशिश करते रहते हैं। कभी कोई ब्राह्मण क्षत्रिय होना चाहा, कभी कोई क्षत्रिय ब्राह्मण, तो झगड़े खड़े हुए। लेकिन आम रिवाज यह रहा कि अपनी सीमा में रहो और झगड़े मत करो।

लेकिन ज्यादा झगड़े क्षत्रिय और ब्राह्मण के बीच हुए, क्योंकि क्षत्रिय के पास शक्ति थी तलवार की और ब्राह्मण के पास शक्ति थी बुद्धि की। वैश्य ने कोई झगड़ा नहीं किया, क्योंकि उसके पास सिर्फ धन की शक्ति थी। और जिसके पास धन की शक्ति होती है वह बहुत भयभीत होता है। क्योंकि धन छीना जा सकता है। उसकी रक्षा में वह बहुत भयभीत है। इसलिए वह कभी कोई कार्य-क्षेत्र में ज्यादा नहीं उतरता है।

महावीर और बुद्ध ने जो बगावत की, वे क्षत्रिय थे और टक्कर ले ली उन्होंने, तो वे क्षत्रिय फोल्ड के बाहर हो गए। उनके फोल्ड के बाहर निकल गए वे। ब्राह्मण वे बन नहीं सके, क्योंकि ब्राह्मणों ने प्रवेश नहीं दिया। क्षत्रिय वे रहे नहीं। उनके पास बनिया होने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह गया, इसलिए सारे जैन बनिए हो गए।

वही एक फोल्ड बचा जिसमें वे घुस जाएं। शूद्र हो नहीं सकते वे। तो बनिया होने के सिवाय कोई रास्ता ही नहीं बचा। ब्राह्मणों ने घुसने नहीं दिया उनको, माना नहीं महावीर-बुद्ध को कि ये कोई ज्ञानी हो सकते हैं। और ये ज्ञान की बातें करके वे क्षत्रिय के फोल्ड से बाहर हो गए। तलवार छोड़ दी उन्होंने ज्ञान की बातों में। उनको बनिया होने के सिवाय कोई रास्ता नहीं रह गया। और वैश्य उनको रोक नहीं सके, क्योंकि वैश्य के पास कोई ताकत नहीं है। वह बेचारा अपनी फिकर में, बचाव में रहता है। वह कोई झंझट में पड़ता नहीं। कोई भी आ जाए।

इसलिए वैश्य से किसी की कांफ्लिक्ट नहीं है। चाहे ब्राह्मण दुकानदारी कर ले और चाहे क्षत्रिय दुकान कर ले। कहता है कि ठीक है भाई, जिससे बने करो। उसमें यह सब झंझट का मौका नहीं है। लेकिन ब्राह्मण नहीं घुसने देगा। न क्षत्रिय घुसने देगा भीतर। वह कहेगा, तुम बनिए हो, तुम क्या तलवार पकड़ोगे?

और शूद्र को सम्मान के बाहर कर दिया। उसको सम्मान की कोई जरूरत नहीं, वह अपनी सीमा में रहे, उससे कोई प्रयोजन नहीं था, वह बाहर है। उसको आने की जरूरत ही नहीं थी, बीच में पड़ने की जरूरत ही नहीं थी।

यह जो समाज की व्यवस्था थी, जो वर्ण व्यवस्था थी, यह बहुत ही कारीगरी की और बहुत होशियारी की व्यवस्था थी। जब तक वह पूरी व्यवस्था नहीं बदलती हिंदुस्तान में कुछ बदल ही नहीं सकता है। वह बहुत खतरनाक व्यवस्था है, वह जान लेने वाली व्यवस्था है। होनी चाहिए एक लिक्विड स्थिति, वह ठोस कर दी हमने। ब्राह्मण के घर में पैदा होने से ही कोई बुद्धिमान नहीं हो जाता। उसमें एक लिक्विड स्थिति होनी चाहिए समाज में।

पश्चिम का जो विकास हुआ वह लिक्विडिटी की वजह से हुआ। वहां न कोई शूद्र है, न कोई वैश्य है, न कोई ब्राह्मण है, न कोई क्षत्रिय है। क्षत्रिय भी हैं, ब्राह्मण भी हैं, शूद्र भी हैं, वैश्य भी हैं, लेकिन ऐसा कोई फिक्स्ड डिमार्केशन नहीं है। एक शूद्र का लड़का ब्राह्मण हो सकता है। एक ब्राह्मण का लड़का नहीं कुछ कर पाए तो शूद्र हो जाएगा। लिक्विड है हालत, ठोस नहीं है कि तुम ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण ही तुम्हारे बच्चे पैदा होंगे।

इसका परिणाम यह हुआ कि जितने बुद्धिमान लोग थे सब वर्गों के, वे ज्ञान के विकास में लग गए। इस मुल्क में वे ज्ञान के विकास में नहीं लग सके। इसमें सिर्फ ब्राह्मणों के बच्चे लग सकते हैं, बाकी कोई बच्चे नहीं लग सकते। इसलिए हम दुनिया से काम्पिटीशन में पीछे रहते हैं। इसलिए आज पश्चिम में ज्ञान का जन्म हो गया, क्योंकि सारा, सारा समाज, जो जिसके घर में बच्चा पैदा हो जाए, वह भंगी का बच्चा हो, किसी का हो, वह ज्ञानी हो सकता है, उसके लिए रास्ता खुला है। और जो नहीं है ज्ञानी, तो आइंस्टीन का लड़का भी अगर ज्ञानी नहीं है तो अपने आप जाकर किसी फैक्ट्री में काम करेगा। इसमें कोई झगड़ा नहीं है, इसमें कोई झंझट नहीं है। खुला काम्पिटीशन है।

तो खुले, ओपन काम्पिटीशन ने पश्चिम में बड़ी ताकत दे दी। तो पश्चिम का ब्राह्मण वैज्ञानिक हो गया और हिंदुस्तान का ब्राह्मण सो रहा। और इसका नुकसान यह हुआ कि हम हार गए और वे जीत गए। और अभी भी हम हारेंगे। क्योंकि अभी भी हमारा ज्ञानी जो है वह सिर्फ पुरोहित का काम करता है। और पुरोहित और वैज्ञानिक में फर्क है। वैज्ञानिक अपने ज्ञान को फैलाता है और पुरोहित अपने ज्ञान को छिपाता है कि आपको पता न चल जाए सीक्रेट, नहीं तो फिर वह राज खत्म हो गया।

वह कहेगा, ये गुप्त चीजें हैं। नमोकार में बड़ा गुप्त रहस्य है, इसका हिसाब नहीं जानते हैं, कोई इसको जानता नहीं। तो पुरोहित ज्ञान का दुश्मन हो गया, क्योंकि वह छिपाता है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

तो वो पूरे वक्त सेक्स के संबंध में ही रूपांतरण करते रहते हैं आप। और मां का मतलब मेरे पिता की पत्नी, और क्या फर्क पड़ने वाला है इससे ज्यादा। लेकिन वह संबंध मेरा रहेगा सेक्स का ही।

स्त्री के साथ मित्र ... इसके सिवाय सब भाव ... और नैतिक व्यक्ति मित्रता वहां से करता है आगे सब संबंध बढ़ाने को।

एक बहुत मजा हुआ। पिछली बार, पहली दफा जब मैं गोविंददास जी के यहां ठहरा था, तो सोहन मैया साथ में आई पूना से। यशा एक लड़की थी, जब आएगी तो आपको मिलाऊंगा। रेअर लड़की है। तो वह मेरे साथ आई। तो उसने रास्ते में पूछा कि कहां ठहरिएगा? तो गोविंददास जी के यहां। फिर तो वे जरूर पूछेंगे कि मैं आपकी कौन हूं? जरूर पूछेंगे। ऐसा भला आदमी तो खोजना बहुत मुश्किल है, जो किसी स्त्री को साथ देखे और पूछे न कि संबंध क्या है?

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

प्रेम को जानने का मौका ही नहीं आता। इसके पहले कि वे प्रेम को जानें, पत्नी उपलब्ध हो जाती है।

प्रश्नः पर ओशो, जब हम जानेंगे ही नहीं प्रेम को ... अब क्या करना होगा? आपने कहा कि बिना प्रेम के लोग मरते हैं।

न, न, न, यह नहीं कह रहा हूं। मतलब लोग बिना प्रेम के ही मरते रहेंगे, मतलब जीवन पूरा बीत जाएगा, प्रेम को नहीं समझ पाएंगे। हमने ऐसा इंतजाम कर दिया है कि वह सेक्स तक ही ले जाता है और ज्यादा से ज्यादा संग-साथ तक ले जाता है। फिर साथ रहने से एक तरह का संबंध बनता है, लेकिन वह प्रेम नहीं है।

प्रश्नः प्रेम स्वाभाविक होता है या कि ... किसी के ऊपर भी स्वाभाविक ही होता है अगर होता है या ...

स्वाभाविक ही हो सकता है। कोशिश करके तो आप ला ही नहीं सकते।

प्रश्नः मृत्यु के बारे में जो मैंने आपसे कहा वह रह गया है, थोड़ी उसकी बात कर लें तो बहुत अच्छ हो। क्योंकि वह समस्या अभी ताजा है।

हां, उसकी बात कर लेंगे, बात कर लेंगे।

इधर मैं इस पर बहुत सोचता था। और मेरा मानना है, जगत सुखी नहीं हो सकता, जब तक हम प्रेम को प्राथमिकता न दें। हम सेक्स को प्राथमिकता दिए हुए हैं। और मजे की बात यह है कि जो सेक्स को प्राथमिकता दिए हैं वे प्रेम को सेक्सुअल बताते हैं और चुकता सारा इंतजाम सेक्स का किए हुए हैं। और अगर जिंदगी में कोई एकाध चीज ऐसी है जो सेक्स के ऊपर उठ सकती है तो वह सिर्फ प्रेम है। धन ऊपर नहीं उठ सकता सेक्स के, यश ऊपर नहीं उठ सकता सेक्स के। सिर्फ एक चीज ऊपर उठ सकती है, वह प्रेम है। और एक ऐसा संबंध दे सकती है जहां शरीर से ऊपर का संबंध है।

लेकिन इसमें कुछ बाधा नहीं है कि वह प्रेम शरीर पर भी मिलना चाहे, उसमें कोई हर्जा नहीं है। लेकिन शरीर पर मिलने की जिनकी शुरुआत होती है उनकी आगे यात्रा हो यह बहुत मुश्किल है। आगे बढ़ने का कोई कारण ही नहीं आता। वह शरीर पर शुरू होती है, शरीर पर खत्म हो जाती है। सेक्स बहुत लोग जान पाते हैं, प्रेम बहुत कम लोग जान पाते हैं। और जो प्रेम को नहीं जान पाता उसमें सेक्स की जो मिस्ट्री थी वह उससे भी अपरिचित रह जाता है। वह सिर्फ मैकेनिकल एक्ट ही जान पाता है, वह उसकी मिस्ट्री को नहीं जान पाता। क्योंकि जिससे हमारा प्रेम का संबंध है और अगर उससे सेक्स का संबंध हो, तो वह सेक्स तब एक अदभुत रहस्य-लोक में ले जाता है। लेकिन पहले प्रेम हो, फिर पीछे सेक्स आए।

प्रश्नः वह तो अदभुत प्रेम होता है।

अदभुत लोक में ले जाता है, जिसका हमें कोई पता ही नहीं है। लेकिन अगर सिर्फ सेक्स रह जाए तो वह इतना मैकेनिकल और इतना ट्रिकी मामला है कि जिसका कोई मतलब ही नहीं है, कोई मतलब नहीं है।

हां, क्या पूछते हैं, बोलो!

प्रश्नः मेरे मन में दो प्रश्न हैं। पहला तो यह कि ध्यान, जागरूकता, सभी भाव ऐसा लगता है कि शरीर और मन के स्वस्थ रहते हैं। शरीर और मन में शिथिलता आई तो यह सब उठ जाता है। और मृत्यु के पहले यह शिथिलता अधिकतर लोगों में आ जाती है--शरीर की भी और मन की भी। तो मृत्यु के पहले तो अपने पर आदमी इतना कंट्रोल खो देता है कि ये कुछ भी विधियां काम देने वाली नहीं हैं। जिसका अर्थ यह हुआ कि एक ध्यान करने वाला या जागरूक रहने वाला व्यक्ति भी अंत में तो वही हो जाने वाला है जो इन सबको नहीं करने वाला है।

नहीं, दो-तीन बातें ध्यान में लेनी जरूरी हैं। पहली बात तो यह कि शुरू-शुरू में जब तुम चलते हो ध्यान की तरफ, तब तो शरीर और मन की स्थितियां उसे प्रभावित करती हैं। क्योंकि जहां से तुम चलते हो वहां तुम शरीर और मन से ज्यादा हो ही नहीं। जैसे मैंने इस कमरे में से निकलना शुरू किया, मैंने एक कदम उठाया, लेकिन अभी भी मैं कमरे में हूं। मैंने दो कदम उठाए, अभी भी मैं कमरे में हूं। तो कमरे की गंध, कमरे की सुगंध या दुर्गंध या कमरे की हवा प्रभावित करती है। लेकिन उठा रहा हूं मैं कदम द्वार तक के लिए जहां से कमरा समाप्त होगा और मैं आगे निकल जाऊंगा। जब मैं कमरे के बाहर निकल जाऊंगा तब फिर कमरे की सुगंध और दुर्गंध का कोई अर्थ नहीं रह जाता, फिर वह प्रभावित नहीं करती।

प्राथमिक यात्रा में, ध्यान में जाते हो। तो अभी तुम मन और शरीर के ही कमरे से गुजर रहे हो। अभी तो असर होगा। अभी तो बहुत असर होगा। अभी तो ऐसा होगा कि जरा ही मन शिथिल होगा, शरीर अस्वस्थ होगा--सब ध्यान-व्यान गड़बड़ हो जाएगा। क्योंकि अभी तुम घेरे में तो वहीं हो। लेकिन जैसे-जैसे तुमने गति की, तुम एक दिन पाओगे कि तुम शरीर और मन के द्वार के बाहर निकल गए।

जिस दिन तुम बाहर चले गए उस दिन हालतें उलटी हो जाएंगी। उलटी ऐसी हो जाएंगी कि वह जो चित्त की दशा होगी वह तुम्हारे शरीर और मन को प्रभावित करने लगेगी, बजाय शरीर और मन के उसको प्रभावित करने के। जैसे ही तुम बाहर हुए वैसे तुम उलटे प्रभावक हो जाओगे, प्रभावित होने के लिए। और तुम्हारा शरीर जितना बीमार है उतना बीमार तुम्हें मालूम नहीं पड़ेगा और तुम्हारा मन जितना शिथिल है उतना शिथिल नहीं मालूम पड़ेगा। तुम एक ताजगी का स्रोत पा जाओगे जो निरंतर तुम्हें उपलब्ध है, जो तुम अपने मन और शरीर को भी बांटने लगते हो।

यह स्थिति जैसे-जैसे बढ़ती चली जाती है--शरीर और मन के बाहर मौत का कोई अनुभव नहीं है। तो जो लोग शरीर और मन के भीतर ही जीते हैं, मरते वक्त एकदम निढाल हो जाते हैं--एकदम। और ठीक मरने के कुछ देर पहले मूर्च्छित हो जाते हैं, मृत्यु मूर्च्छा में ही घटित होती है। लेकिन जो लोग सजग हैं और ध्यान की दुनिया में कहीं गए हैं, वे जब मरने लगते हैं तब वे मृत्यु पर ध्यान करते हैं। यानी तब--वह तो शरीर से दूर होने का अनुभव उन्हें हो चुका है--अब शरीर मर रहा है, इसे वे देख पाते हैं। अब शरीर शिथिल हो रहा है, इसे देख पाते हैं।

अभी मैं पिछले दिन कह रहा था, आस्पेंस्की मरा तो वह चलता हुआ मरा। उन्नीस सौ साठ में मरा। और उसके कोई पचास शिष्यों को उसने निमंत्रित किया हुआ था कि मेरी मौत देख जाओ आकर। तो वे पचास शिष्य इकट्ठे हैं और आस्पेंस्की टहल रहा है। और वह कहता है कि इतना समय और लगेगा, क्योंकि शरीर इतने दूर तक डूब गया है, इतने तंतु टूट गए हैं। और वह टहल रहा है। और वह कह रहा है, टहल मैं इसलिए रहा हूं ताकि मैं परिपूर्ण होश में अंतिम खबर देते हुए मरूं। यानी ऐसा न हो कि मैं लेट जाऊं और झपकी लग जाए। ...

वह टहल रहा है, टहल रहा है, टहल रहा है ... मित्र सब इकट्ठे हैं। उसमें एक आदमी जो मौजूद था, निकोल, उसने संस्मरण लिखा है पूरा। और उसने लिखा है कि हम तो उसी दिन मृत्यु से मुक्त हो गए। क्योंकि उस आदमी को जब हमने मरते

देखा है तो हम हैरान हो गए, क्योंकि पूरे वक्त हमें दिखाई पड़ने लगा सब पूरा का पूरा उस आदमी में कि वह मर भी रहा है और है भी। यानी इधर मरता भी जा रहा है और यह उसकी मौजूदगी में हम सबको एहसास होने लगा कि इधर वह मर रहा है और उधर वह होता भी जा रहा है, यानी वह है भी। कोई चीज खत्म भी नहीं हो रही है और कोई चीज डूब भी रही है। जैसे कोई चीज डूब रही हो, जैसे कि आपने वीणा छेड़ दी है और आखिरी स्वर गूंजता हुआ, गूंजता हुआ, गूंजता हुआ जा रहा है, ऐसे कोई चीज मिट भी रही है, लेकिन कोई चीज उसकी आंख से, उसके व्यक्तित्व से पूरी की पूरी मालूम पड़ रही है कि है।

और वह आखिरी क्षण तक टहलता ही रहा। और उसने कहा, बस यह आखिरी है मेरा जाना वहां तक। वहां तक मैं पहुंच पाऊं, इससे ज्यादा नहीं पहुंच पाऊंगा, क्योंकि आखिरी ताकत छोड़े दे रही है शरीर को। ये पंद्रह कदम और उठ सकते हैं, इतना मुझे लगता है। और एग्जेक्ट तेरहवें कदम पर वह गिर गया।

उन सब मित्रों ने लिखा है कि हमें मृत्यु पहली दफा... ऐसी सजग एक आदमी की मौत हुई। ऐसा फकीरों ने बहुत बार किया है, बहुत बार किया है। तो जो ध्यान में गया है वह उस जगह पहुंच जाता है जहां शरीर के और पीछे होने की संभावना खुलती है। जैसे मैं इस कमरे के भीतर जा चुका हूं। फिर यह मकान गिर रहा है, तो मैं हटता जा रहा हूं इस कमरे में, मैं कहता हूं कि यह मकान गिर जाएगा, अब यह दीवाल गिरने के करीब हो गई; अब मैं हट रहा हूं। और आप देख रहे हैं मुझे इस दरवाजे पर कि वह आदमी पीछे हट गया है कहता हुआ कि अब यह मकान गिरने को है। वह हट गया है मकान से। लेकिन वह न चिंतित है, न दुखी है, क्योंकि और मकान भी है और अस्तित्व भी है।

तो जो व्यक्ति ध्यान को उपलब्ध हो जाता है, मरते वक्त परिपूर्ण होश में मरता है। और इसलिए अक्सर मृत्यु की सूचना दी जा सकती है।

अभी अमृतसर में हुआ न! मेरी अफवाह उड़ा दी, भारी अफवाह उड़ा दी कि मैं मर गया। वहां फोन हो गया कि मैं खतम हो गया। विधान सम्मेलन होने वाला है, उसमें मैं न आऊं ऐसा साधु-संन्यासियों ने कहा मेरे को। उन्होंने यह अफवाह उड़ा दी कि वे तो खतम ही हो गए अब। मैं अभी गया तो दो साधु मुझे मिलने आए। तो मैंने उनसे कहा कि तुम अपने सब साधुओं को कहना कि मैं इतनी जल्दी न मरूंगा। उनमें से कई को विदा कर दूंगा, फिर विदा होऊंगा। और दूसरा, मरूंगा तो पहले खबर कर दूंगा। इसलिए आइंदा से अखबार का ख्याल ही मत करना।

कोई अफवाह उड़ाता है... पहले राजकोट में ऐसा किया। वहां एक अफवाह उड़ा दी आज से दो साल पहले। मेरी मीटिंग थी, उसके पहले अफवाह उड़ा दी कि वे तो खतम ही हो गए, अब वे आएंगे कैसे। लोग न पहुंचें इसके लिए अफवाह उड़ा दी। तो उसका परिणाम बहुत अच्छा हुआ कि दस हजार लोग मुझे सुनते थे वहां, उस बार पच्चीस हजार लोगों ने सुना। लोग पता लगाने आए कि भई यह अफवाह है, दोनों खबरें हैं कि मर गए और एक खबर यह भी है कि भाषण होगा, तो जरा जाकर देख आएं कि यह मामला क्या है।

बिल्कुल बताया जा सकता है मौत को, बिल्कुल बताया जा सकता है। न केवल बताया जा सकता है बल्कि उसको नियमित भी किया जा सकता है। यानी ठीक ऐन वक्त पर मरा भी जा सकता है। वह भी कोई सवाल नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

जो हो रहा है, हो रहा है। हमें कुछ कहने की भी जरूरत नहीं कि यह ठीक हो रहा है, वह गलत हो रहा है। सच में नहीं है जरूरत। सच में ही कोई जरूरत नहीं है, कोई जरूरत नहीं है। किसी को अच्छा, गलत, सही कहने की कोई जरूरत नहीं है। बल्कि उससे उसे तो फायदा शायद ही होता हो, हमें नुकसान होता है। क्योंकि हमारा चित्त तो उतने द्वंद्व में पड़ जाता है, अकारण पड़ जाता है। अकारण पड़ जाता है। यानी जिसमें हमारा कोई कारण ही नहीं है, जिससे हमें कोई लेना-देना नहीं है। एक तो यह ध्यान में लें।

और दूसरा यह कि जो भी काम कर रहे हैं उस काम को करते वक्त उसी काम को करें, इसकी थोड़ी फिकर लें। जैसे खाना ही खा रहे हैं, तो खाना खाते वक्त इसकी फिकर करें कि खाना ही खा रहे हैं। हमारा मन दुकान में इत्यादि में नहीं जा रहा है, खाने में ही लगा हुआ है, तो खाना ही खा रहे हैं। स्नान कर

रहे हैं तो स्नान ही कर रहे हैं। उस वक्त कहीं कुछ और नहीं जा रहे हैं।
दूसरी बात यह ध्यान में रखें--जो काम कर रहे हैं उसमें जितना ज्यादा, जितना ज्यादा उसमें रुक सकें उतना अच्छा है।

और तीसरा साक्षी का भाव रखें। जैसे साक्षी का भाव यह है कि जो भी हो रहा है--सफलता हो रही है, असफलता हो रही है, लाभ हो रहा है, हानि हो रही है--उसमें हम सिर्फ देखने वाले हैं, इससे ज्यादा हमारा कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः इसमें मैं जो कर रहा हूं, वह इस प्रकार का जागृति का भाव रख रहा हूं--कोशिश कर रहा हूं, प्रयत्न है, होगा कि नहीं होगा, पता नहीं। फिर भी हो रहा है--जैसे मैं हाथ से कोई काम कर रहा हूं तो यही याद रहे कि हाथ कर रहा है, टांगें कर रही हैं, चल रहा हूं तो टांगें चल रही हैं। यह भाव आ रहा है। इसमें मैं अपने आपको तो अलग करता हूं, तो इससे वह असंग...

हां, यह साक्षी-भाव हुआ। यह तीसरा जो मैं कह रहा हूं, बिल्कुल साक्षी-भाव हुआ यह। यह साक्षी-भाव, प्रत्येक कार्य को पूरा जीना और तथाता का भाव रखना कि चीजें ऐसी हैं। किसी चीज में कोई कारण ही नहीं कि हम उपद्रव में चले जाएं, कोई कारण ही नहीं है। ये तीनों अगर सम्हलती चली जाएं तो धीरे-धीरे-धीरे-धीरे वर्तमान अपने आप... और कुछ रह ही नहीं जाएगा, वह आ ही जाएगा वर्तमान। कुछ और रहने का कारण ही नहीं है, कोई उपाय ही नहीं है। और तथाता पर जो आज मैंने कहा उस पर बहुत ध्यान देने की जरूरत है। बहुत बेसिक है वह।

प्रश्नः तो यह है कि सब चीज देखते रहो। हो रहा है।

हां-हां। और उस वक्त जब भी... बार-बार मन पकड़ाएगा कि अरे यह फलाना हो रहा है, उस वक्त थोड़ा ध्यान रखो कि यह फिर वही हुआ जा रहा है। और जैसे ही ख्याल आ जाए, वापस लौटा लें मन को।

प्रश्नः यह, आचार्य श्री, फैक्चुअल बात है कि हमारे करने से कुछ होने वाला नहीं है? सचमुच जैसा हो रहा है वैसा ही होने दें?

फैक्चुअल हो या न हो। समझे न! तुम्हारी समाधि में उतरने के लिए सहयोगी है। यानी यह सवाल बहुत बड़ा नहीं है कि यह फैक्चुअल है या नहीं। यह सवाल बड़ा नहीं है।

मेरी तो जो अपनी दृष्टि है वह यह है कि कई दफा बहुत अदभुत चीजें खोजी गई हैं, लेकिन हमने उनको ऐसी जगह पकड़ कर फंसा दिया चीजों को, विचारों को--जैसे भाग्य है। भाग्य फैक्चुअल नहीं है, लेकिन समाधि के लिए बड़ा अर्थपूर्ण है। अगर एक आदमी पूर्ण भाग्यवादी है तो समाधि के लिए उसको बाधा ही नहीं है। बात खतम हो गई। फैक्चुअल का सवाल नहीं है यह कि भाग्य होता है कि नहीं होता है। वह एक बेवकूफी में डाल दिया सवाल को कि भाग्य होता है कि नहीं होता है। जिन्होंने खोजा था उन्होंने तो डिवाइसेस फॉर मेडिटेशन है। ये सब उपाय हैं जिनके बीच में ध्यान घटित हो जाएगा। भाग्य का मतलब यह है कि अब कोई सवाल ही नहीं है।

प्रश्नः सब कुछ खराब कर दिया इन्होंने।

यह इतना अजीब मामला हो जाता है न, अजीब मामला... और छोटी-छोटी बेवकूफी की बातों में उसको लागू करते रहेंगे। फिर वह फैक्चुअल का पूछने लगता है आदमी कि यह फैक्चुअल कैसे है? वह है डिवाइस बिल्कुल। यानी वह है सिर्फ एक उपाय। और उपाय जो है वह सब काल्पनिक है। क्योंकि कल्पना को ही काटना है। सत्य हो कैसे सकता है उपाय!

यानी अगर कांटा झूठा लगा है तो निकालने वाले सच्चे कांटे से तुम कैसे निकाल सकोगे? और सच्चे कांटे से निकालोगे तो और झंझट में पड़ जाओगे। झूठा निकल जाएगा, सच्चा फंस जाएगा। तो वह झूठा जितना दुख दे रहा था उससे ज्यादा दुख यह देगा। झूठे कांटे को तो झूठे कांटे से ही निकालना होगा।

तो अगर बहुत गहरे में समझो तो सब विधियां झूठी हैं। क्योंकि हम झूठ में फंसे हैं, वे झूठ को निकालने के लिए सिर्फ हैं। निकल गया तो बात खतम हो गई। दोनों झूठ कट गए और हम अपनी जगह पर खड़े हो गए।

अब भाग्य इतना अदभुत है कि अगर किसी को ख्याल में आ जाए कि यह सब भाग्य है, तो बात ही खत्म हो गई। यानी अब प्रश्न क्या रहा सोचने का? उपाय क्या रहा सोचने का? गरीबी आई है, अमीरी आई है, दुख आया, सुख आया, बीमारी आई, कोई जीया, कोई मरा, वह आदमी कहता हैः सब भाग्य है। अगर यह पूरा भाव...

प्रश्नः पूरा होना चाहिए!

हां, पूरा। नहीं तो बेकार हो जाए, उसमें कोई मतलब नहीं होगा। तो जो भाग्य है--जैसे मैंने तथाता का कहा, तथाता बौद्ध विचार है, भाग्य हिंदू धारणा है, लेकिन मूल्य वही है उसमें। मूल्य उसका वही है, कि तुम अगर मुझे चांटा भी मार दो...

अब जैसे कि यह कल मैंने कहा। कल कोई आया था। अब मेरी बड़ी तकलीफ है। मेरी तकलीफ यह है कि मुझे वह चीज दिखाई पड़ती है कि वह मामला ऐसा है। लेकिन उसके आस-पास इतना जाल बुना हुआ है कि जब मैं उसकी बात भी करता हूं तो वह जाल तुम्हारे दिमाग से निकालना मुश्किल हो जाता है।

कल एक आदमी आया और उसने कहा, क्या आप कहते हैं कि कोई आदमी हमको चांटा मार दे, गाली दे दे, तो हम ऐसा समझें कि पिछले कर्म का फल है?

अब यह फैक्ट नहीं है। लेकिन यह भी डिवाइस है। किसी कर्म-वर्म का फल नहीं है। तुम्हारे कर्म-वर्म के फल सब निपट गए। लेकिन यह भी डिवाइस है। अगर कोई मुझे चांटा मारे और मेरे मन में यह पूर्ण भाव हो कि यह मेरे किसी किए का फल लौट रहा है, तो न मैं चिंता करूंगा, न मैं क्रोध करूंगा। क्योंकि यह सिर्फ लौटती हुई धारा है, जो मैंने किया था वह लौट आया, बात खतम हो गई। तो यह ध्यान में सहयोगी हो जाएगा।

मगर ये सब हैं ध्यान की सहयोगी व्यवस्थाएं, और सब झूठी हैं। और जब ये दोनों बातें मैं कहता हूं तो मुश्किल हो जाती है खड़ी। क्योंकि ये सच्ची तो नहीं हैं, सच्ची मैं इनको कह नहीं सकता।

प्रश्नः और वह भाग्य भी जैसा वह समझे वैसा ही वह झूठा ही है, काल्पनिक, सारी चीज काल्पनिक है।

बिल्कुल झूठा ही है, काल्पनिक। मगर सहयोगी है। क्योंकि दूसरी कल्पना को तोड़ सकती है, बस इतना काम काफी है उसके लिए। यानी मामला ऐसा है जैसे एक घर में भूत है और तुम परेशान हो। और मैंने कहा कि लाओ मैं एक ताबीज बांधे देता हूं, मंत्र फूंके देता हूं, भूत खतम। ताबीज बांध कर मंत्र फूंक दिया, ताबीज हाथ में आ गया, भूत का डर चला गया। मगर अब यह ताबीज फंस गया। अब यह ताबीज तोड़ने की हिम्मत भी नहीं जुटा सकते, कि ताबीज तोड़ा कि भूत आ जाएगा। वह भी एक झूठ था और यह भी एक झूठ है। मजा यह है कि उस झूठ को इस झूठ से निकाला था, अब तुम इस झूठ से फंस गए।

समझ में अगर आ जाए तो पूरब ने बड़ी अदभुत बातें खोजी थीं, जो व्यक्ति को समाधि में ले जाने का मार्ग बन जाती हैं।

प्रश्नः लेकिन सब गलत दूसरे तरीके से...

सब गलत, उन्होंने सबने नुकसान पहुंचा दिया। क्योंकि भाग्यवाद से समाधि तो न आई, भाग्यवाद से दरिद्रता आई, कायरता आई। यानी यह अजीब मामला है।

अब यह तथाता जो है इससे समाधि तो न आए, बुद्धू आदमी इससे चोरी-चपाटी करने लगे कि तथाता का मामला है, इसमें झंझट क्या है! यानी जैसा होना है, होना है। अपने को क्या करना है। चोरी होना है तो हो रही है, इसमें कोई क्या करेगा। यह सारा मामला है। सब ऊंचे से ऊंचा सिद्धांत भी नीचे से नीचा अर्थ दे सकता है और नुकसान पहुंचा सकता है।

प्रश्नः और यह रॉ-ईटिंग का भी कुछ थोड़ा फर्क है?

रॉ-ईटिंग का ऐसा है, आपको तो कोई नुकसान होने वाला नहीं, इसलिए मैंने आपसे कुछ कहा नहीं, आपको कोई नुकसान होने वाला नहीं। लेकिन अगर किसी व्यक्ति को जन्म से ही खिलाया जाए, तो थोड़े नुकसान हो सकते हैं। और दो-तीन पीढ़ियों तक खिलाया जाए, तो बहुत नुकसान हो सकते हैं। इतना अजीब सब है, असल में आदमी के शरीर पर से बाल गिर गए हैं, कम हो गए हैं, उसका भी हाथ रॉ-ईटिंग बंद होने की वजह से। नहीं तो आदमी के पूरे शरीर पर भालू जैसे बाल होंगे, अगर रॉ-ईटिंग जारी रहे तो। अगर रॉ-ईटिंग जारी रहे तो। क्योंकि रॉ-ईटिंग में वे तत्व चले जाते हैं जो बालों को बहुत बड़ा कर देते हैं। तो आदमियों के शरीर से बाल गिर गए हैं, बाकी जानवरों के नहीं गिरे, उसका कुल कारण है कि उनका सब ईटिंग रॉ है और आदमी का पक्के। तो पकने में वे तत्व मर जाते हैं जो बालों को अति ग्रोथ देते हैं।

तो हजार चीजें जुड़ी हुई हैं पीछे। अच्छा, और अगर रॉ-ईटिंग... तो है क्या कि आदमी का जो पेट है... जानवर इतना चलता है, दौड़ता है, यह सब करता है, इतनी गर्मी पैदा कर लेता है उसका पेट कि वह कच्चे को पचा जाता है। अब आदमी जो है वह न इतना जानवर की तरह दौड़ता है, न चलता है, न पत्थर फोड़ता है, तो उसको गर्मी तो पेट में पैदा होती नहीं, और रॉ-ईटिंग कर ले। तो इस कच्चे को पचाने के लिए जठराग्नि उसकी काम की नहीं है। तो वह अग्नि जो है वह सिर्फ सब्स्टीट्यूट है। जो आग हम पैदा पेट में नहीं कर पा रहे हैं, वह हम चूल्हे में कर रहे हैं। वह जो चूल्हे में आग जल रही है वह हमारा आधा काम निबटाए दे रही है वहां, जो हमको करना पड़ेगा। और वह जानवर को करने की जरूरत नहीं, उसके पेट में इतनी आग जल रही है। और आग के मामले ऐसे हैं कि जिसका कोई हिसाब नहीं।

अब तुम हैरान होओगे जान कर, कश्मीरी लोग हैं न, तो वह क्या कहते हो तुम उसको, कांगड़ी, तो वे कांगड़ी रखे रहते हैं। उनकी पूरी छाती जल जाती है। और उनके पेट में इतनी गर्मी पैदा हो जाती है कि यह मानना है कि कश्मीरी स्त्री से संभोग करना बहुत कठिन मामला है, गैर-कश्मीरी को। करे तो पूरे शरीर में आग मालूम पड़े। उसके पेट में इतनी आग हो जाती है कि उसकी पूरी की पूरी बॉडी जैसे बिल्कुल अंगार हो जाती है।

वह अंग्रेजों ने अनुभव लिखे हैं अपने कि कश्मीरी स्त्री से कभी संभोग में मत पड़ जाना। नये आफिसर्स को सूचना देते थे कि कश्मीरी स्त्री से बचना। क्योंकि उससे संभोग करना बीमारी में पड़ना है बिल्कुल पक्का। और आफिसर्स तो कर लेते थे पकड़ कर, किसी को बुला लेते थे। उन्हें क्या दिक्कत थी! और जहां ठहरे वहीं बुलाना ही है उनको। तो इसकी हिदायत है कि कश्मीरी औरत से बच जाना।

तो अब यह एक-एक चीज...

प्रश्नः और ये जुड़ी हुई हैं।

हां, जुड़ी हुई हैं। तो मेरा अपना मानना यह है कि मिक्स ईटिंग अच्छी है। रॉ-ईटिंग के कुछ फायदे हैं, तो कुछ चीजें कच्ची खाएं, कुछ चीजें पकी खाएं। वैसे आपको कोई अब नुकसान होने का कारण इसलिए नहीं है...

प्रश्नः नहीं, आधी तो मेरी खुराक पक्की है।

बस, तब ठीक है। मिक्स्ड ईटिंग। मैं टोटल रॉ-ईटिंग के पक्ष में नहीं हूं।

प्रश्नः दो रोटी खाता ही हूं। उसके साथ ही फल वगैरह...

बस ठीक है। कुछ पक्का खाएं, कुछ कच्चा खाएं, वह ठीक है। कच्चे का कुछ फायदा है वह मिलता रहेगा, पक्के का कुछ फायदा है वह मिलता रहेगा। और अब

आपको नुकसान का सवाल नहीं है, इसलिए कि अब बॉडी आपकी बन तो रही नहीं है, अब बनने का सवाल नहीं है। यह तो बच्चे के लिए प्रॉब्लम है, जिसकी बॉडी बन रही है। अब एक उम्र के बाद तो बॉडी फिर बनती नहीं, वह तो फिर सिर्फ समाप्त होती है। सच बात तो यह है कि पैंतीस साल के बाद उतरना शुरू हो जाता है। बॉडी नहीं बन रही, अब सेल्स टूट रहे हैं। तो अब आप क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, इसमें इतना ही ध्यान रखना जरूरी है कि वह हलका हो, बस। इससे ज्यादा कोई मतलब नहीं है।

इसलिए मैंने आपको नहीं कहा। उसमें कोई चिंता लेने की बात नहीं है। आप तो अपना जारी रखें, उसमें कोई हर्जा नहीं है।

व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज

तीसरा प्रवचन

आनंद का सृजन

एक मित्र पूछ रहे हैं कि जिंदगी ऐसे ही बीती चली जाती है। अब थकान लगने लगी, कुछ मिलता हुआ मालूम नहीं पड़ता है। तो ऐसी जिंदगी से क्या फायदा है?

पहली बात तो यह समझनी चाहिए कि जो हमें मिल गया है, उसका हमें पता नहीं चलता। जिंदगी खुद इतनी बड़ी चीज है जो हमें मुफ्त मिल गई है। लेकिन उसके लिए हमारे मन में कोई धन्यवाद ही नहीं है। हम कहते हैं, और कुछ मिलना चाहिए। अगर और कुछ भी मिल जाएगा तो उसके लिए हमारे मन में धन्यवाद बंद हो जाएगा। हम कहेंगे, और कुछ मिलना चाहिए।

जिंदगी इतनी बड़ी चीज है जो हमें मिली है। और जिंदगी इतनी असंभव चीज है जो हमें मिली है। कोई दो अरब सूरज हैं। दो अरब सूरजों पर इतनी ही अरब पृथ्वियां हैं उन सूरजों पर। और इस एक छोटी सी पृथ्वी पर अभी जीवन है। यह न होता तब तो बड़ा सहज था मामला। यह है, यह बहुत ही आश्चर्यजनक है। इस पृथ्वी पर भी करोड़ों प्रकार की योनियां हैं। उनमें भी अकेले मनुष्य को थोड़ा सा बोध है। बोधपूर्ण जीवन अकेले मनुष्य के पास है। यह इतनी बड़ी घटना हैः जीवन का होना और चेतना का होना। लेकिन हम कहते हैं कि जीवन बेकार मालूम पड़ता है, क्योंकि कुछ और मिलता नहीं।

इसमें पहली भूल तो यह हो रही है कि हम, जीवन इतनी बड़ी घटना है, इसको ही नहीं देखते हैं। जीवन मिल गया है, इससे ज्यादा और मिलने को हो भी क्या सकता है? होना भी इतनी बड़ी बात है कि जिसकी हम कोई कीमत नहीं आंक सकते। क्योंकि अगर हम न हों तो किससे शिकायत करेंगे? और अगर हम न हों तो हम कैसे रोक सकते हैं न होने को? लेकिन हम हो सके हैं, इतना अदभुत मिरेकल घट गया है, लेकिन उस पर हमारी कोई नजर ही नहीं है।

तुम कुत्ता नहीं हो, बिल्ली नहीं हो, चूहा नहीं हो--आदमी हो। पत्थर नहीं हो। और तुम्हारे भीतर चेतना है। लेकिन ये दो कौड़ी की बातें हैं हमारे लिए। हम कहते हैं कि यह जीवन बेकार है, क्योंकि हमें कुछ और चाहिए।

क्या चाहिए तुम्हें? इतनी बड़ी चीज जब तुम्हें बेकार लग रही है, तो तुम्हें कुछ भी मिल जाए तो बेकार लगेगा। यानी तुम्हारे सोचने का मापदंड, करने का ढंग ही गलत है। तुम्हें कुछ भी मिल जाए, तुम कहोगे यह बेकार है।

तो पहली तो बात यह है कि जीवन की धन्यता को अनुभव करना जरूरी है, अगर आनंदित होना हो। जो मिल गया है, वह क्या है, इसे पहचानना जरूरी है।

लेकिन मनुष्य के मन की बुनियादी भूल यह है कि जो है वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। एक अंधे आदमी को पता चलता है कि आंख होती तो कितना आनंद होता, आंख वाले को कभी पता नहीं चलता कि क्या आनंद है। अंधे आदमी से पूछो! तो वह कहेगा, सब खोने को तैयार हूं, आंख मिल जाए। आंख वाले से पूछो! वह कहेगा, आंख! आंख का कोई सवाल ही नहीं उठता। जो हमारे पास है वह हमें दिखाई नहीं पड़ता।

मेरे एक मित्र हैं, वे मुझे मिलने आते थे, वर्षों से आते थे। जब भी मुझे मिलने आते थे तो वे खुद ही इतनी बात करते थे कि मुझे सिर्फ हां और न करनी पड़ती थी। इससे ज्यादा मैंने कभी उनसे बात नहीं की। इधर वे बहरे हो गए। इस बार आए तो बहुत रोने लगे, कहने लगे कि मैं बहरा हो गया।

तो मैंने कहा, इसमें रोने की क्या बात है? तुम सदा से बहरे थे, तुमने कब किसको सुना था! तुम तो बोलते थे, तो बोल तो अब भी सकते हो। रह गई हां-न की बात, तो मुझे कभी-कभी हां-न कहना था, तो अब वह मैं लिख कर हां और न बता दूंगा। तो मुझे तो सुनने का कोई सवाल न था।

उन्होंने कहा, अब मुझे लगता है कि मैं चूक गया आपको सुनने से।

तो मैंने कहा, तुम्हारे पास कान होते तो तुम्हें कभी भी न लगता।

जो हमारे पास है वह हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है। जो हमारे पास नहीं है उसका हम हिसाब लगाए बैठे हैं। और जो हमारे पास है वह इतना है कि जो हमारे

पास नहीं है उसका हिसाब लगाना ही नासमझी है, उसका कोई मूल्य ही नहीं है। कठिनाई यह है कि जो मिला हुआ है वह टेकेन फॉर ग्रांटेड हो जाता है। वह है ही, उसकी कोई बात ही नहीं करनी है हमें।

लेकिन हमारा कोई दावा है इस दुनिया पर कि हमें यह मिलना ही चाहिए? अगर मेरी आंखें कल चली जाएं तो मैं किससे शिकायत करूंगा? और जब तक मेरे पास आंख थी तब तक मैंने कुछ भी नहीं किया उन आंखों से--न मैंने फूल देखे, न मैंने चांदनी देखी, न मैंने कोई सुंदर चेहरा देखा--मैंने इन आंखों से कुछ भी नहीं किया। जब तक मेरे पास कान हैं तब तक न मैंने सितार सुनी, न मैंने पक्षियों के गीत सुने, न मैंने कोई सुनने योग्य बात सुनी। जब कान खो गए तब मैं बैठ कर रोऊंगा, जब आंख चली जाएगी तब मैं रोऊंगा। और जिंदगी जब तक है तब तक कर क्या रहे हैं हम? जिंदगी का क्या कर रहे हैं हम?

तो इसमें पहली बात तो यह समझ लेना कि अगर तुमने यह कहा कि जिंदगी बेकार चली जा रही है, और कुछ की मांग अगर तुमने बना ली, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे, पहली बात। दूसरी बात यह ध्यान में रखना जरूरी है कि जिंदगी कोई ऐसी चीज नहीं है कि वहां कोई बना-बनाया आनंद कहीं रखा है कि तुम जाओगे और तुम्हें मिल जाएगा। ये सारे दुनिया के धर्मों ने गलतफहमी आदमी को पैदा की है। उन्होंने एक रेडीमेड मोक्ष और एक बना हुआ आनंद--जैसे कहीं रखा हुआ है; कोई सत्य, हम किसी दरवाजे की चाबी खोलेंगे और भीतर खजाना मिल जाएगा; कि आनंद कहीं है जहां से हम चूक रहे हैं, रास्ता मिल जाए तो हम अभी जाकर आनंद को पा लें।

यह बिल्कुल ही भ्रांत बात है। आनंद, मुक्ति, रहस्य, सत्य--कुछ भी--कहीं तैयार रखा हुआ नहीं है। तुम कैसे जीते हो, उस जीने से ही वह सृजित होता है, उसी से वह निर्मित होता है। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है कि एकदम मैं अचानक पाऊंगा और एक जगह पहुंच जाऊंगा जहां आनंद का मंदिर है, दरवाजा खुलेगा और आनंद मुझे मिल जाएगा। न, आनंद तो कदम-कदम पर है, श्वास-श्वास पर है कि मैं कैसे जी रहा हूं। और अगर मैं प्रत्येक पल आनंद में जीता चला गया तो एक दिन मैं पाऊंगा कि इतना इकट्ठा हो गया है कि अब सिवाय अनुग्रह के और कुछ भी शेष नहीं है; किसको धन्यवाद दूं उसको खोजना पड़ेगा। ...

लेकिन हम किसी गुरु के पास जा रहे हैं, कोई चाबी बता दे, कोई मेथड बता दे, कोई रास्ता बता दे जिससे हम गुजर जाएं और बस आनंद पर पहुंच जाएं। और मजा यह है कि प्रतिपल चूकते चले जा रहे हैं। आनंद का मतलब हैः आनंदपूर्ण ढंग से जीना। आनंद जो है वह डायनेमिक बात है, स्टेटिक नहीं है। वह निरंतर गति है। जैसे एक आदमी साइकिल चला रहा है। वह जितनी देर चला रहा है, साइकिल चल रही है। अब वह आदमी बैठ जाए उतर कर और फिर कहे कि मुझे साइकिल चलाना खोजना है! कहां है साइकिल चलाना? कहां मिलेगा मुझे जहां कि यह साइकिल चलाना मैं पा लूं?

हम उससे कहेंगे, तुम पागल हो। चलाओ, तो साइकिल चलेगी। मत चलाओ, बैठे रहो, तो कहीं भी नहीं है साइकिल चलाना। कहीं रखा हुआ नहीं है किसी पैकेट में बंद, जहां तुम जाओगे और खरीद लाओगे। तुम चलाओ!

आनंद जो है वह कहीं रखा हुआ नहीं है। लेकिन सारे धर्मों ने, सब गुरुओं ने एक बड़ी भ्रांत धारणा हमारे मन में बैठा दी है कि कहीं रखा हुआ है। किसी को मिल गया और किसी को नहीं मिला है। मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि पल-पल आनंद से जीओ! और पल-पल आनंद से जीने का ख्याल आ जाए तो जरूर एक दिन इतना आनंद तुम्हारे भीतर इकट्ठा होता चला जाएगा कि उसका हिसाब लगाना मुश्किल हो जाएगा।

लेकिन पल-पल तो हम दुख से जीएंगे, यह भी एक दुख पालेंगे कि हमको अभी आनंद नहीं मिला हुआ है, यह भी एक दुख पालते चले जाएंगे। पल-पल हम दुख से जीएंगे, और दुखी होने की आदत बन जाएगी, और फिर हम आनंद खोजेंगे। आनंद कहां मिलने वाला है! उलटा काम कर रहे हैं।

कौन सी चीज में सुख ले रही हो? सुख लेने के लिए बहुत चीजें हैं। हम किसी चीज में सुख नहीं ले पाते। बल्कि जिस चीज में भी सुख मिल सकता, उसमें भी दुख ले लेते हैं। अगर एक सुंदर आंख मुझे दिखाई पड़ती है, एक सुंदर चेहरा दिखाई पड़ता है, एक सुंदर फूल दिखाई पड़ता है--सुंदर फूल को देख कर मैं यह दुख ले लेता हूं कि मेरी बगिया में नहीं खिला हुआ है। यह बड़े मजे की बात है! फूल

खिला था और उससे मैं आनंदित हो सकता था और दो श्वासें मेरी फूल की सुगंध से सुगंधित हो सकती थीं। लेकिन वह फूल जिससे मैं सुख ले सकता था, सिर्फ दुख दिया मुझे। और मैं यह भाव लेकर गया कि अपने पास कोई बगिया नहीं। कब अपने पास बगिया होगी, कब अपना फूल खिलेगा! सबकी बगिया में फूल खिल गए हैं, हम मरे जा रहे हैं। वह फूल जिसमें कि तुम्हें कोई दुख देने का कारण न था, वह तुम दुख लेकर चले आए।

हम चौबीस घंटे हर चीज से दुख इकट्ठा कर रहे हैं। फिर हम चिल्लाते हैं कि हम बड़े दुखी हो गए हैं, जीवन से थक गए हैं। कोई जिम्मेवार नहीं है। जिम्मेवार हम हैं। अगर थक गए हो तो गलत ढंग से चल रहे हो; अगर ऊब गए हो तो गलत ढंग से जी रहे हो; अगर दुखी हो गए हो तो दुख इकट्ठा कर रहे हो। सो दुख इकट्ठा करते ही चले जाओ और फिर आनंद की मांग करते रहो, तो ये दोनों छोर कभी नहीं मिलेंगे।

तो जिंदगी में सुख लेना पड़ेगा हमें। और जिंदगी के प्रतिपल पर सुख लेना पड़ेगा, क्षुद्रतम से सुख लेना पड़ेगा। क्योंकि जिंदगी में न कुछ क्षुद्र है, न कुछ विराट है। और जो क्षुद्र का सुख नहीं ले सकता वह विराट के सुख को कभी उपलब्ध नहीं होगा। जिंदगी छोटी-छोटी चीजों का जोड़ है। छोटे-छोटे अणुओं से मिल कर सारी इतनी बड़ी पृथ्वी है। बहुत छोटी-छोटी चीजों का जोड़ है। ये छोटी-छोटी बूंद से मिल कर इतना बड़ा सागर है।

लेकिन कोई कहेः बूंदों से हमें कोई मतलब नहीं, हमें सागर चाहिए! बस यह फंस गया दिक्कत में, इसने गलत रास्ता पकड़ लिया। क्योंकि बूंद-बूंद इकट्ठी होती तो सागर होने वाला था। बूंद तो इसे चाहिए नहीं।

जब तुम भोजन कर रहे हो तब तुम आनंद से कर रहे हो; जब तुम कपड़े पहन रहे हो तब आनंद से पहन रहे हो; जब तुम मित्र से मिल रहे हो तब तुम आनंद से मिल रहे हो; जब तुम किसी को प्रेम कर रहे हो तब आनंद से कर रहे हो; जब तुमने चांद की तरफ देखा है तो तुमने कोई आनंद लिया; जब फूल मिला है तो तुमने कुछ आनंद लिया; जब दो घड़ी तुम्हें शांति की मिली, कोई काम न रहा, तो तुम अपने सोफे पर आंख बंद करके विश्राम किए हो। नहीं, वह कुछ भी नहीं किया है। और तब हम थक गए हैं। थक हम जाएंगे।

जिंदगी बहुत मौके दे रही है, हम सब मौके चूक जाते हैं। और हर चीज में हमने तरकीबें बना रखी हैं। अगर मुझे एक सुंदर चेहरा दिखाई पड़ा तो उस सुंदर चेहरे से मुझे जो सुख मिल सकता था वह मैं नहीं लूंगा; उससे दुख ले लूंगा--कि वह किसी और की पत्नी है, किसी और का पति है, वह किसी और का बेटा है। तो मैं चूक गया। और वह जिसका बेटा है, जिसकी पत्नी है, जिसका पति है, वह किसी और का चेहरा देख कर परेशान हुआ जा रहा है। वह अलग दुखी हो रहा है, हम अलग दुखी हो रहे हैं। सारी दुनिया दुखी हो रही है। दुख हमारा चुनाव है। तुम दुख चुन रहे हो तो दुख इकट्ठा होता चला जाता है। और फिर दब जाओगे उसके नीचे, फिर परेशान हो जाओगे। दुख को चुनो मत। कौन तुमसे कहता है दुख को चुनो? सुख को चुनो।

लेकिन हमारा पूरा चिंतन सुख-विरोधी है। हम उस आदमी को अच्छा कहते हैं जो दुख चुनता है। अब हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं। जो आदमी दुख चुनता है वह बहुत अच्छा आदमी है; जो आदमी सुख चुनता है वह अच्छा आदमी है ही नहीं। हमें वह आदमी जंचता ही नहीं कि इसमें कुछ खूबी की बात है, जो सुख चुन लेता है।

पर दुनिया को जाने दो तुम, अपनी फिकर करो और सुख चुनने की फिकर करो। चौबीस घंटे ऐसे जीओ कि हम हर चीज से सुख निकालेंगे। और देखो चौबीस घंटे के बाद कहां दुख है। सिर्फ चौबीस घंटे यह तय करके कि आज इस मिनट से लेकर चौबीस घंटे, जो भी होगी जिंदगी में घटना, उससे हम सुख निकालने की कोशिश करेंगे, हम उससे सुख खींचेंगे। चौबीस घंटे बाद तुम पाओगे कि सुख की एक हवा तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठी हो गई है।

मैं कल्पना ही नहीं कर सकता कि किसी आदमी को दुखी होने की जरूरत है, जब तक कि वह होना ही न चाहे; और कोई आदमी सुखी नहीं हो सकता, जब तक कि वह होना ही न चाहे। तो हम होना तो चाहते हैं सुखी और जो व्यवस्था करते हैं वह सब दुख की है, इसलिए कंट्राडिक्शन दिनों-दिन पैदा हो जाता है। फिर हम पूछते फिरते हैं।

इधर तुम दुख इकट्ठा करोगी और मुझे फंसा दोगी पीछे। मुझसे पूछोगी कि सुख कहां है? और अगर मेरे पास सुख नहीं मिला, तो वह आदमी ठीक नहीं है, उससे सुख नहीं मिला। फिर तुम किसी और के पास जाओगी। वहां भी सुख न मिलेगा। तुम दोषी दुनिया को ठहरा दोगी।

तुम मेरे पास आकर भी दुख चुन लोगे। यानी मैं इतना हैरान हूं कि मेरे पास कोई आएगा तो मैं जानता हूं कि यह आदमी मुझसे दुख चुनेगा कि सुख। वह भी मुझे पता चलना शुरू हो जाता है। लेकिन मैं भी कुछ नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि यह दुख चुन रहा है। वह मुझसे भी दुख इकट्ठा करके ले जाएगा। कोई वजह न थी। मुझसे दुख चुनने की क्या वजह थी? मुझसे अगर कोई सुख मिल सकता था, ठीक था। नहीं तो यह आदमी ठीक नहीं, अपने रास्ते पर चले गए। इस आदमी से दुख चुनने की क्या जरूरत? लेकिन इससे दुख चुन लिया जाएगा। और जिससे तुम दुख चुन लोगी वह तुम्हें दुश्मन मालूम पड़ने लगेगा। और जिससे तुम सुख चुन लोगी वह तुम्हें मित्र मालूम पड़ने लगेगा।

उस आदमी के ही इस जगत में मित्र हो सकते हैं जो सुख चुनने की कला जानता है। वह आदमी दुनिया में दुश्मन ही दुश्मन देखने लगेगा जो दुख चुनने की कला सीख गया। और हम तो दुख चुनने की कला सीख गए हैं।

अब अभी दो दिन पहले एक सज्जन मिलने आए। तो वे मुझसे पूछने आए हैं कि शांति कैसे मिले? बड़ा मन अशांत है। शांति खोजने आए हैं मेरे पास, मन बड़ा अशांत है, शांति कैसे मिले? और उनकी पत्नी ने शाम आकर कहा कि वह आपकी चप्पल उन्होंने देखी कि मखमल की है, तो वे बहुत वो हो गए कि किस...

तो मैंने कहा कि अब जो आदमी... मेरी मखमल की चप्पल से उसको क्या प्रयोजन है? मेरे पास चप्पल न भी हो तो भी उसे कोई मतलब नहीं है और हो भी और मखमल की हो तो भी उसे कोई मतलब नहीं है। तो मैंने कहा कि वह आदमी अब दुख चुनने को, अशांति चुनने को ही तैयार है तो कोई भी क्या कर सकता है? यानी मेरी चप्पल से उसको क्या लेना-देना था? न मैं उससे चप्पल मांगने गया था कि मेरे लिए कोई चप्पल दे दे। अभी मैं उसकी चप्पल भी छीनता तब भी कोई बात थी। उससे कोई संबंध ही न था। लेकिन अब वह आदमी... अब यह जो आदमी है न, अब इससे जो मैंने बातें कीं वे इसको दिखाई ही नहीं पड़ीं। यह चप्पल ही देख कर गया है।

उसने अपनी पत्नी से कहा कि भई, वहां मुझे नहीं जमता। क्योंकि वह चप्पल तो, क्या जरूरत साधु को ऐसी चप्पल पहनने की?

मैंने उसको कहा कि मैं साधु हूं या असाधु, यह मेरे जानने की बात है। इसका कुछ भी निर्णय करना है तो मुझे करना है। नरक-स्वर्ग के दरवाजे पर पहुंचूंगा तो मैं पहुंचूंगा। जवाब-सवाल भगवान से कुछ करने होंगे तो मैं कर लूंगा। इस चप्पल के लिए कुछ बातचीत चलेगी तो मैं उत्तर दूंगा। तुमसे तो कहीं गवाही भी नहीं लूंगा। तुम क्यों बीच में पड़ते हो? तुम्हें क्या मतलब है? तुम आए थे अपनी शांति खोजने। लेकिन तुम यहां से भी अशांति खोज कर गए।

हमारा जो दिमाग है वह पूरे वक्त कैसे काम कर रहा है इसको समझने की कोशिश करो। क्या वह अशांति चुनने के रास्ते खोज रहा है? दुख चुन रहा है? जहां भी जा रहा है वहां से कांटे चुन रहा है? तो वह चुनता चला जाएगा। फिर बहुत मुश्किल है, फिर बहुत कठिन है। और चौबीस घंटे तुम्हारा चुनाव ही तुम्हारा व्यक्तित्व बनेगा। तुम क्या चुन लोगी वही तुम हो जाओगी। अगर तुम दुखी हो तो तुम्हारी दुख चुनने की आदत है। इस आदत को तोड़ना पड़ेगा। और कोई नहीं तोड़ सकता, इसको तुम्हें ही तोड़ना पड़ेगा। और तुम्हें देखना पड़ेगा कि पूरे वक्त मैं क्या चुनाव कर रही हूं।

एक चौबीस घंटे का तय कर लें कि चौबीस घंटे मैं सुख चुनने की फिकर करूं। इस कमरे में आओ तो सुख चुन सकती हो। किसी व्यक्ति से मिलो तो सुख चुन सकती हो। सुख के बहुत द्वार हैं। जितने द्वार सुख के हैं उतने ही द्वार दुख के हैं। अब हम किस तरफ खोलते हैं, यह हम पर निर्भर है सदा। और जब तुम जिंदगी में सुख के ही द्वार खोलने में समर्थ हो जाते हो कि हर जगह सुख का द्वार खोल लेते हो--हर जगह--तो अंत में जीवन के यह जो इतना-इतना सुख तुम पर बरस पड़ता है, यह सारे सुख की वर्षा ही तुम्हें अंततः जिसको तुम आनंद कहो, मोक्ष कहो, उसमें तुम्हें ले जाती है।

उमर खय्याम ने मजाक में एक बात कही है। उसने तो सब कुछ मजाक में कहा है। और दुनिया में जो बहुत गंभीर लोग हुए हैं उन्होंने सारी बातें मजाक में कही हैं। ...

गांव के मौलवी ने उसे कहा कि बंद कर दो यह शराब पीना ! और अगर बंद नहीं की तो स्वर्ग चूक जाओगे। और तुम्हें शायद पता नहीं कि स्वर्ग में शराब के चश्मे बहते हैं , झरने बहते हैं। तो उमर खय्याम ने कहा कि बस , बहुत ही अच्छा हुआ तुमने यह और बता दिया। मैं उसी का अभ्यास कर रहा हूं। और तुम्हें ध्यान रहे , जब हम दोनों स्वर्ग के चश्मे पर पहुंचेंगे , तो मेरा तो शराब पीने का अभ्यास रहेगा , तुम्हारा बिल्कुल नहीं रह जाएगा। तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। तुम पीओगे कैसे ? जिसने कुल्हड़ में नहीं पीया वह झरने में कैसे पीएगा ? तो उमर खय्याम ने कहा , मैं तो कुल्हड़ में पीता रहूंगा , ताकि अभ्यास बना रहे। अभ्यास बढ़ाता चला जाऊंगा , ताकि जब पूरी नदी सामने आए तो ऐसा न हो कि नदी पर खड़े रह गए हैं और पीने की सामर्थ्य ही न रहे।

अब वह बात बिल्कुल ठीक ही कह रहा है , जिसने कुल्हड़ में सुख नहीं जाना वह विराट आनंद को कैसे जानेगा ? जिसने क्षण में सुख नहीं जाना वह शाश्वत सुख को कैसे जानेगा ? लेकिन अब तक हमें जो लॉजिक सिखाया गया है वह उलटा है। वह यह कहता हैः क्षण के सुख को छोड़ो , यह क्षणभंगुर सुख है। इसको छोड़ोगे तो तुमको स्थायी सुख मिलेगा।

यह तर्क ठीक मालूम पड़ता है , लेकिन बिल्कुल ही गलत है। जिसने क्षणभंगुर का भी सुख नहीं जाना वह स्थायी सुख को कैसे जान सकेगा ? यानी कुल्हड़ में शराब पीना जिसने सीखी है वह किसी दिन झरने की शराब में भी डूब सकता है। वह जो क्षण से सुख आ रहा है उसको लो। प्रत्येक क्षण में आने वाले सुख को लेते -लेते -लेते तुम्हारी वह क्षमता हो जाएगी कि तुम पूरे सागर में भी डूब सको।

इसलिए मेरी दृष्टि अगर तुम्हें समझनी हो तो मैं क्षणवादी हूं , क्योंकि मैं मानता हूं कि क्षणवादी ही शाश्वत को उपलब्ध हो सकता है। मैं सुखवादी हूं , क्योंकि मैं मानता हूं सुखवादी ही आनंद को उपलब्ध हो सकता है। और जिंदगी में कुछ भी त्याज्य नहीं है सिवाय दुख चुनने की प्रवृत्ति के। कुछ भी त्याज्य नहीं है। और जो लोग त्याग करते फिरते हैं वे उलटे लोग हैं , वे दुख को ही चुनते फिरते हैं। वे दुख को चुनते फिरते हैं।

तो दुख को चुनो मत। और अगर चुनना है तो फिर पूरे मन से चुनो , फिर उसके लिए रोओ मत। फिर यह मान लो कि हमारा दुख ही चुनाव है। तब फिर इसमें भी एक रस आएगा। फिर इसकी फिकर ही छोड़ दो। फिर यह मत कहो कि हम थक गए , हम हार गए। हारोगे , थकोगे , क्योंकि दुख कैसे प्रफुल्लित रख सकता है ?

एक चौबीस घंटे के लिए तय करो ऐसा जीने का --कि हम चौबीस घंटे में जहां भी जो भी होगा उसमें से सुख चुनने की कोशिश करेंगे। यह जो ख्याल में आ जाए , तो फिर आनंद कहीं रखा नहीं है जहां तुम पहुंचोगे आखिर में और वह तुम्हें मिल जाएगा , वह जब तुम चल रही हो तभी तुम आनंद को निर्मित करती जा रही हो। वह तुम्हारे भीतर घनीभूत होता जा रहा है , घनीभूत होता जा रहा है।

मैं शायद पीछे कह रहा था एक जगह , अमेजान नदी के बाबत मैं पढ़ रहा था , तो वह इतनी बड़ी नदी , सारी दुनिया की सबसे बड़ी नदी , जहां से निकलती है वहां एक -एक बूंद टपकती है। और एक -एक बूंद भी बीस -बीस सेकेंड के बाद टपकती है। दुनिया की सबसे बड़ी नदी एक -एक बूंद के टपकने की जगह से पैदा होती है। और वह एक-एक बूंद भी बीस सेकेंड के गैप से टपकती है। बीस सेकेंड में बन पाती है तब एक बूंद टपकती है।

बस, जीवन का राज भी यही है। यहां अगर बीस -बीस सेकेंड में एक -एक बूंद सुख भी मिल जाए तो अमेजान का आनंद उपलब्ध हो जाए। लेकिन तुम अगर बूंद के खिलाफ हो , तो तुम जानो , फिर तुम्हें कभी आनंद उपलब्ध होने वाला नहीं है। कोई आदमी हो सकता है वह कहे कि क्या यह बूंद का टपकना लगा रखा है ? कहीं बूंद टपकाने से नदी बनने वाली है ? बंद करो यह सब ! क्षणिक सुख बंद करो , शाश्वत की चाह करो !

तर्क ठीक है , लेकिन सभी तर्क ठीक जो मालूम पड़ते हैं वस्तुतः ठीक नहीं होते। क्षण के पूरे सुख को भोगो। क्षण को इतना पी जाओ , इतना निचोड़ लो कि उसमें से कुछ शेष ही न रह जाए। उसको निचोड़ कर फेंक दो , उसमें कुछ बचे ही न।

ताकि पीछे लौट कर देखना ही न पड़े कभी कि कोई छोर अधूरा रह गया जिसमें से और चूसना था, नहीं चूस पाए। पूरा पी जाओ उसे। और तब तुम्हारा व्यक्तित्व ऐसा बनता जाएगा कि वह आनंद को सब जगह से घेर लेगा, खींच लेगा आखिर तक।

अगर तुमने ऐसा सोचा कि कहीं मिल जाएगा कुछ और... तब तो फिर तुम्हें कहीं नहीं मिलेगा, फिर मिलना असंभव है। जीवन एक कला है। और कला बहुत साफ है। इसलिए ऐसा मत सोचना कभी कि अभी हम कैसे ही जीएं, कोई तरकीब हाथ लग जाएगी और आनंद मिल जाएगा। नहीं मिलेगा। क्योंकि इस बीच तुम जी रही हो और तुम्हारी आदत मजबूत होती चली जा रही है।

मैं कई दफे इतना हैरान होता हूं कि आदमी क्यों दुख चुनता है? हम किसी के साथ चौबीस घंटे रहें तो हम सब तरह से दुख चुन लेंगे उससे। और हम इतने सेंसिटिव हो गए हैं दुख के लिए कि बस वह जगह-जगह हमको--जैसे कभी घाव लग जाए न, चोट लग जाए शरीर में, तो दिन भर फिर उसी पर चोट लगती रहती है। फिर ऐसा लगता है कि पता नहीं क्या बात है कि आज इस अंगूठे में ही बार-बार क्यों लग रहा है!

वह रोज लगता है, लेकिन रोज पता नहीं चलता था। वह आज पता चल रहा है, क्योंकि वहां चोट है। तो हम दुख का एक घाव बनाए हुए हैं अपने भीतर। सुख का हमने कोई स्थान नहीं बनाया है, बस दुख का घाव बनाया हुआ है। बस वह चौबीस घंटे सजग है। जरा सा धक्का कि बस हम सजग हुए, चोट फिर खा गए, घाव और बड़ा हो गया। फिर वह बढ़ता जाता है, फिर बढ़ता जाता है। और जो समझाने वाले हैं, हमें समझाते रहे हैं सदा से, वे यही कहते हैं कि ये-ये-ये सब ठीक है। यह आनंद और स्थान पर है, वहां पहुंचना पड़ेगा। वे हमको भ्रांति देते हैं।

कहीं आनंद नहीं है। तुम जहां हो वहीं! तुम्हारे चुनाव पर निर्भर है तुम क्या चुन लेते हो। अगर इसको ऐसा देख सको तो बदलाहट हो सकती है।

प्रश्नः लेकिन कभी-कभी आउटर...

वह कभी ज्यादा नहीं होता। यह कहती हैः कभी-कभी बाहर का जो दबाव है वह हमारी क्षमता से ज्यादा हो जाता है।

वह कभी नहीं होता। जिस दिन वह क्षमता से ज्यादा हो जाएगा, तुम समाप्त हो जाओगे उसी वक्त, तुम बच नहीं सकते। वह सदा क्षमता के भीतर है। असल में हमें अपनी क्षमता का भी कोई पता नहीं होता। लोग कहते हैं असहनीय दुख! कोई दुख असहनीय हो तो तुम खतम हो जाओगे, तुम बचोगे कैसे? सब दुख सहनीय हैं। नहीं तो तुम मिट ही जाओगे न! बचोगे कैसे? असहनीय दुख जैसी कोई चीज होती ही नहीं। कहते हैं लोग कि बड़ा असहनीय दुख है, अब सह न सकेंगे इसको। लेकिन वे यह कह कर भी सहे चले जा रहे हैं। यह भी सहने की तरकीब है। यह भी वे इंतजाम कर रहे हैं सहने का। यह कह-कह कर वे अपने मन को राजी कर रहे हैं सहने के लिए।

आदमी की क्षमता बहुत अदभुत है, बड़ी विराट है। बाहर का कोई दबाव अगर असहनीय होगा तो तुम टूट ही जाओगे, तुम पूछने को भी नहीं बचोगे। इसलिए वह तो सवाल के बाहर है। यानी वैसा आदमी तो पूछने आएगा ही नहीं, उसकी तो बात ही खतम हो गई। बाहर का दबाव कभी इतना ज्यादा नहीं है कि तुम टूट जाओ, सब दबाव को झेल कर तुम बच जाते हो।

तो वह दबाव जितना बड़ा तुम देख रही हो उतना बड़ा नहीं है, तुम उससे सदा बड़े हो। और वह दबाव जितना बड़ा हम देख रहे हैं वह भी हमारी कल्पना है। वह भी हमारी दुख चुनने की आदत है जिसकी वजह से हम दबाव देख रहे हैं।

और जिंदगी के सदा दो पहलू हैं। किस चीज को दबाव कहते हो?

जमीन पर तुम चलते हो। जमीन पूरे वक्त खींच रही है तुमको। हवा पूरे वक्त दबा रही है तुमको। पूरा दबाव हवा डाल रही है तुम पर; जमीन इधर से तुमको खींच रही है। अब तुम चाहो तो टिक कर बैठ जाओ कि कैसे चलें? इतना बड़ा दबाव हम सहेंगे कैसे? यह तो मर जाएंगे। जमीन पूरे वक्त खींच रही है तुमको और हवा पूरे वक्त दबा रही है। इतनी हवा का भार है, दो सौ मील हवा की परतें हैं, वे पूरे वक्त दबा रही हैं। इधर यह जमीन का ग्रेविटेशन पूरे वक्त खींच रहा है।

और मजा यह है कि तुम सोचते होओ कि इसकी वजह से चलने में बाधा पड़ रही है, तो गलती है। इसी की वजह से चलना हो पा रहा है। अगर पृथ्वी न खींचे और हवा न दबाए, तुम अनंत में खो जाओ, तुम्हारा कहीं पता न चले। पृथ्वी खींचती है इसलिए जमीन पर हम हैं। हवा दबाती है इसलिए जमीन पर हम चल पाते हैं। एक छोटी सी कीड़ी पर भी इतना ही दबाव है। वह भी चल रही है। अगर सारा दबाव हट जाए तो वह कीड़ी और हम और सारा जगत अनंत में खो जाए, इसी वक्त विदा हो जाएं हम।

वह जो हमारे चारों तरफ दबाव है वह हमारी जिंदगी का हिस्सा है, उसके साथ ही हमको जीना है। अगर वह बिल्कुल हट जाए तो तुम पागल हो जाओ, तुम बच न सको एक मिनट। इसलिए उससे घबड़ाने की जरूरत नहीं, उस दबाव का भी उपयोग करने की जरूरत है। उस दबाव का भी उपयोग करने की जरूरत है।

उसी का तो हम उपयोग कर रहे हैं। बाहर से चौबीस घंटे दबाव होंगे, उन दबावों का उपयोग करो। उन दबावों से भी सुख लो।

अब हम, क्या मजा है, दबाव वही होते हैं, हमारी नजर बदल जाती है। एक दुश्मन को मैं जोर से पकड़ कर गले से लगा लूं, दबाव वही का वही है। और एक प्रियजन आ जाए, उसको गले से लगा लूं, दबाव वही का वही है। दुश्मन छुरी निकाल लेता है कि मेरी जान लिए ले रहे हो! मित्र बहुत धन्यवाद देता है कि तुमने गले लगाया। दबाव बिल्कुल वही का वही है। नजर अलग-अलग है उनकी, दबाव में क्या फर्क पड़ने वाला है! अगर कोई मेजरमेंट हमारे पास हो दबाव नापने का, तो वह न बता सकेगा कि मित्र ने दबाव डाला था कि दुश्मन ने दबाव डाला था। अगर मैं किसी को छाती से लगाऊं और जोर से छाती से दबा लूं, तो कोई मशीन यह नहीं बता सकती कि दबाव मित्र पर डाला जा रहा है कि दुश्मन पर डाला जा रहा है। मशीन इतना बता देगी कि इतना दबाव डाला जा रहा है।

तो दबाव तो तटस्थ है, हम कैसे लेते हैं उसको, उस पर सब कुछ निर्भर करता है। दृष्टि बदलने की जरूरत है। चारों तरफ दबाव भी रहेंगे, उनको चुनना पड़ेगा।

और फिर मजा यह है कि हम अपने हाथ से भी लोगों को दबाने के लिए निमंत्रण देते हैं। अगर मैं फिकर करने लगूं कि आप मेरे बाबत क्या सोचते हैं, आप मेरे बाबत क्या सोचते हैं, तो आपको मैं निमंत्रण दे रहा हूं कि आप मुझे दबा सकते हैं। मैं फिकर ही नहीं करता कि आप मेरे बाबत क्या सोचते हैं, तो मैंने निमंत्रण लौटा लिया। अब मैं यह कह रहा हूं कि आपके दबाने का कोई मतलब नहीं रहा। आप दबा कर नाहक मेहनत करोगे। आपके दबाने से कोई दबाव नहीं पड़ेगा।

हम चौबीस घंटे निमंत्रण दे रहे हैं दबाव के लिए। हम कह रहे हैं, फलां आदमी मेरे बाबत क्या सोचता है, हम इसका पता लगाते फिर रहे हैं। अब जब पता लग जाएगा तो दबाव पड़ना शुरू हो जाएगा।

क्या जरूरत है कि हम फिकर करें कि कौन आदमी तुम्हारे बाबत क्या सोचता है? इतना ही काफी है कि मैं अपने बाबत क्या सोचता हूं। तुम्हें भी क्या जरूरत है कि तुम दूसरे के बाबत सोचो? क्योंकि जब तुम दूसरे के बाबत सोचना शुरू करते हो, तब भी तुमने दबाव डालना शुरू कर दिया, फिर दबाव की प्रतिक्रिया भी होगी। हम अपना ही जाल खड़ा करते हैं। हम पूरे समय जाल खड़ा करते हैं। इस सब जाल में, जीने का जो रस है, वह खो जाता है।

जीने के रस को प्राथमिकता दो। और बाकी सब चीजों को जीने के रस का साधन बनाओ, सब चीजों को। मित्र को भी साधन बनाओ और शत्रु को भी बनाओ। अब यह ध्यान रहे कि जिस आदमी को ठीक से जीना है उसके लिए शत्रु भी जरूरी है। क्योंकि शत्रु भी जिंदगी में एक रस लाता है, जो कि शत्रु के मर जाने पर बिल्कुल खाली हो जाता है। वह भी जिंदगी को एक कंट्रास्ट देता है। बस इतनी ही बात है कि होशियार आदमी होशियार शत्रु बनाएगा, बुद्धिमान आदमी बुद्धिमान शत्रु बनाएगा, बड़ा आदमी बड़े शत्रु बनाएगा। लेकिन शत्रु भी जरूरी है, वह चारों तरफ से गति देता है।

जैसे तुम कल्पना नहीं कर सकते, अगर ब्रिटिश साम्राज्य न हो तो गांधी को पैदा नहीं किया जा सकता। गांधी को पैदा करने का कोई उपाय नहीं है। गांधी के पैदा होने में गांधी के मां-बाप का जितना हाथ है उससे ज्यादा ब्रिटिश हुकूमत का हाथ है। असली पिता और मां वह है। उसी दबाव में वे पैदा हुए।

अगर जीसस को सूली पर न लटकाया गया होता तो क्रिश्चिएनिटी दुनिया में होती ही नहीं। क्रिश्चिएनिटी के जन्मदाता जीसस नहीं हैं; क्रिश्चिएनिटी की जन्मदात्री तो वह व्यवस्था है जिसने जीसस को सूली पर लटका दिया। वह सूली पर लटकाने का जो दबाव था उससे एक मूवमेंट पैदा हुआ। सारी चीजें बड़ा वर्तुल बना कर फैलती चली गईं।

इसलिए जीसस के मुकाबले हिंदुस्तान का कोई तीर्थंकर और कोई अवतार जीत नहीं सकता। उसका कारण है कि हिंदुस्तान के किसी तीर्थंकर, किसी अवतार पर इतना दबाव नहीं पड़ा, कोई सूली पर लटका नहीं। इसलिए उनसे बड़े वर्तुल पैदा नहीं हो सके। क्रिश्चिएनिटी जो विश्व-धर्म बन सकी उसका कारण यह है कि एक आदमी मर गया, उसने सब दांव पर लगा दिया।

लेकिन दांव पर लगाने वाले लोग अगर थोड़े और तरह के होते, समझ लें कि बहुत बुद्धिमान लोग होते, जैसा कि भविष्य में हो सकते हैं। भविष्य में जीसस का पैदा होना मुश्किल हो जाएगा। अगर उन्होंने सूली पर न लटकाया होता और जीसस की बातों को गंभीरता से न लिया होता और कहते कि ठीक है कहो, मजे से कहो जो तुम्हें कहना है। जीसस इस बुरी तरह खो जाते कि पता लगाना मुश्किल हो जाता।

जो बहुत बुद्धिमान हैं वे तो यह भी कहते हैं, जो जानते हैं इस सीक्रेट को वे तो यह भी कहते हैं, इस सारे खेल में जीसस का भी हाथ था। यानी जीसस को सूली पर लटकाया जाए, इसमें जीसस का हाथ था। यह कांस्पिरेसी जीसस की तरफ से प्रेरित थी। उन्होंने पूरा ड्रामा तैयार किया हुआ था। और जिस जुदास ने जीसस को बेचा, उनका ही शिष्य था और सबसे प्यारा शिष्य था। और इस बात की बहुत संभावना है कि वह जीसस की ही प्रेरणा से उसने दुश्मनों को जाकर उभाड़ा और जीसस को बेचा।

अब जीसस चाहते थे कि वे सूली पर लटका दिए जाएं। क्योंकि जैसे ही वे सूली पर लटक जाते हैं, उन्होंने जो कहा है वह सदा के लिए मनुष्य के मन पर अंकित हो जाता है। सूली जो है उसे सदा-सदा के लिए मनुष्य की चेतना पर इतना प्रगाढ़ गाड़ देगी कि वह फिर कभी हट नहीं सकता। तो जीसस अपनी मृत्यु का भी उपयोग कर रहे हैं। वे जो कहना चाहते हैं, उसको, अनंतकाल तक उसके वाइब्रेशंस पैदा होते रहें, इसलिए वे अपने को सूली पर लटका देना चाहते हैं। इसमें कोई बहुत आश्चर्य नहीं है, यह संभव है। जीसस जैसे समझदार आदमी के लिए यह संभव है कि उसने अपनी सूली का भी इंतजाम करवा लिया हो। इसमें बहुत कठिनाई नहीं है।

जो बाहर का दबाव है, जो हमें लगता है कि विपरीत है, उसका उपयोग करो। उस सबका उपयोग हो सकता है। उससे डरो मत, उससे भागो मत, उसको दुख मान कर मत चलो, उसका भी उपयोग करो। जिंदगी एक उपयोग है। जिसमें हम कैसा उपयोग करते हैं, सब कुछ निर्भर करता है। और निमंत्रण क्यों देना? हम दुख को निमंत्रण दिए चले जाते हैं। सुख को निमंत्रण दो! जो निमंत्रण तुम दोगे वही आ जाता है द्वार पर। मगर तुमने कभी सुख को इनविटेशन भेजे ही नहीं। तुमने सदा दुख को ही भेजे हैं। वे आ गए हैं, बार-बार चले आते हैं रोज। जिन मेहमानों को तुमने बुलाया वे घर आ जाते हैं। जिनको तुमने नहीं बुलाया वे नहीं आते। फिर तुम रोती हो कि इन मेहमानों से कैसे छुटकारा हो? पर तुम रोज उनको आज भी सुबह-शाम उनको निमंत्रण-पत्र भेजे चली जा रही हो।

अपने निमंत्रण-पत्र भेजना बंद कर दो दुख के लिए। सुख को बुलाओ। वह भी उतना ही आने को तत्पर है। और प्रतीक्षा मत करो कि कहीं अपने आप आ जाएगा, कि हम कहीं पहुंच जाएंगे और मिल जाएगा। नहीं; रोज-रोज जीना पड़ेगा ऐसे कि हम प्रतिपल उसको पैदा करते रहें। वह प्रतिपल पैदा होता है।

चौथा प्रवचन

साक्षी हो जाना ध्यान है

प्रश्नः ... जहां पर ध्यान करने पर आवाज निकलती है, आपने बताया था कल ही कि वहां ध्यान करो। लेकिन कंपन ज्यादा होने से वहां पर एकाग्रता टिकती नहीं ...

नहीं; पहली तो यह बात आपके ख्याल में नहीं आई कि एकाग्रता ध्यान नहीं है। मैंने कभी एकाग्रता करने को नहीं कहा। ध्यान बहुत अलग बात है। साधारणतः तो यही समझा जाता है कि एकाग्रता ध्यान है। एकाग्रता ध्यान नहीं है। क्योंकि एकाग्रता में तनाव है। एकाग्रता का मतलब यह है कि सब जगह से छोड़ कर एक जगह मन को जबरदस्ती रोकना। एकाग्रता सदा जबरदस्ती है; उसमें कोएर्शन है। क्योंकि मन तो भागता है और आप कहते हैं नहीं भागने देंगे। तो आप और मन के बीच एक लड़ाई शुरू हो जाती है। और जहां लड़ाई है वहां ध्यान कभी भी नहीं होगा। क्योंकि लड़ाई ही तो उपद्रव है हमारे पूरे व्यक्तित्व की, कि वहां पूरे वक्त कांफ्लिक्ट है, द्वंद्व है, संघर्ष है।

तो मन को ऐसी अवस्था में छोड़ना है जहां कोई कांफ्लिक्ट ही नहीं है। तब तो ध्यान में आप जा सकते हैं। मन को छोड़ना है निर्द्वंद्व। अगर द्वंद्व किया तो कभी ध्यान में नहीं जा सकते। और अगर द्वंद्व किया, द्वंद्व किया तो परेशानी बढ़ जाने वाली है। क्योंकि हारेंगे, दुखी होंगे। जोर से द्वंद्व करेंगे--हारेंगे, दुखी होंगे, और चित्त विक्षिप्त होता चला जाएगा। बजाय इसके कि आनंदित हो, प्रफुल्लित हो--और उदास, और हारा हुआ, फ्रस्ट्रेटेड हो जाएगा।

तो मन से तो लड़ना ही नहीं है, यह तो मेरा पहला सूत्र है। जो मन से लड़ेगा उसकी हार निश्चित है। अगर जीतना हो मन को तो पहला नियम यह है कि लड़ना मत। तो इसलिए मैं एकाग्रता के लिए, कनसनट्रेशन के लिए सलाह नहीं देता हूं। मेरी सलाह तो है रिलैक्सेशन के लिए, कनसनट्रेशन के लिए नहीं। मेरी सलाह एकाग्रता के लिए नहीं है, मेरी सलाह तो विश्राम के लिए है।

तो घंटे भर के लिए मन को विश्राम देना। तो विश्राम का सूत्र अलग हो जाएगा। विश्राम का पहला तो सूत्र यह है कि मन जैसा है हम उससे राजी हैं। अगर आप नाराज हैं उससे तो फिर विश्राम नहीं संभव हो सकता। क्योंकि नाराजी से लड़ाई शुरू हो जाएगी। मन जैसा भी है--बुरा और भला, क्रोध से भरा, चिंता से भरा, विचारों से भरा--जैसा भी है, हम उसी मन के साथ राजी हैं। तो एक घंटे के लिए वक्त निकाल लें और मन जैसा है उसके साथ पूरी तरह राजी हो जाएं। टोटल एक्सेप्टबिलिटी। विरोध ही नहीं है हमारा कोई। अगर मन भागता है तो हम भागने देते हैं। अगर रोता है तो रोने देते हैं। अगर हंसता है तो हंसने देते हैं। अगर वह व्यर्थ की बातें सोचता है तो सोचने देते हैं। हम कहते हैं कि मन जो भी करे, एक घंटा लड़ाई नहीं करेंगे। तो पहली बात, हम लड़ेंगे ही नहीं। मन जो भी करेगा, हम चुपचाप बैठे देखते रहेंगे।

यह न लड़ना हो, तो एक तो स्थूल लड़ाई है जब आप लड़ते हैं--कि मन कह रहा है कि यहां जाना है और आप कहते हैं कि वहां नहीं जाएंगे। जैसा कि साधारणतः धार्मिक आदमी करता रहता है। इसलिए धार्मिक आदमी साधारणतः दुखी आदमी होगा। धार्मिक आदमी पूरे वक्त यही करता रहता है। मन कहता है खाना खाओ, वह कहता है नहीं खाएंगे। मन कहता है यह कपड़ा बहुत सुंदर है, वह कहता है हम कपड़े छोड़ देंगे। वह मन से लड़ कर ही चलता है। तो मन से लड़ कर वह दुखी होगा, परेशान होगा, लेकिन शांत नहीं हो पाएगा।

तो एक घंटे के लिए मन से कोई लड़ाई नहीं लेनी है। मन जो करता है, हम कहते हैं करो। लेकिन यह तो बहुत स्थूल हुई बात; हमारे मन में बड़ी सूक्ष्म लड़ाई है जिसका हमें पता नहीं है। कंडेमनेशन है हमारे मन में। जैसे हम यह भी कह देंगे कि अच्छा जो करना है करो। लेकिन इसमें भी कंडेमनेशन हो सकता है।

इसमें भी यह हो सकता है कि कोई बात नहीं, हम नहीं लड़ते हैं। यह बात तो ठीक नहीं है कि मन सोच रहा है कि एक वेश्या के घर चले जाएं। हम कहते हैं,

बात तो ठीक नहीं है, लेकिन चूंकि एक घंटा हमको नहीं लड़ना है इसलिए हम नहीं लड़ते हैं, लेकिन यह बात ठीक नहीं है। अगर इतना भी रुख है भीतर कि यह बात ठीक नहीं है, तो लड़ाई जारी है। तब विश्राम उपलब्ध नहीं होगा।

तो स्थूल रूप से लड़ना नहीं है, सूक्ष्म रूप से निंदा और प्रशंसा नहीं करनी है--कि यह ठीक है, यह गलत है। यह मन करेगा, तो एक भीतरी एप्रूवल है हमारा कि हां, यह बहुत बढ़िया हो रहा है। कि कृष्ण भगवान की मूर्ति बना रहा है, यह बहुत ही बढ़िया हो रहा है। और एक नग्न स्त्री की मूर्ति बना रहा है, तो बहुत बुरा हो रहा है। यह सूक्ष्म निंदा और प्रशंसा भी नहीं होनी चाहिए ध्यान में। इसका मतलब यह हुआ कि लड़ना मत और किसी तरह का रुख मत लेना, एटिट्यूड मत लेना कि यह अच्छा है कि बुरा है। निर्णय मत लेना कि क्या है। जो है--है।

हम एक वृक्ष के पास खड़े हैं। उसमें कांटे लगे हैं तो लगे हैं और फूल लगा है तो लगा है। हम न तो यह कहते हैं कि फूल अच्छा है, न यह कहते हैं कि कांटे बुरे हैं। हम इतना ही कहते हैं कि हमें पता चल रहा है कि कांटे लगे हैं और फूल लगा है। हम फूल और कांटे के बीच न कोई तुलना करते हैं, न एक-दूसरे को ऊंचा-नीचा बिठाते हैं, न हम यह चाहते हैं कि फूल ही फूल हो जाएं और कांटे बिल्कुल न रह जाएं।

तो अगर इसे ठीक से समझेंगे तो एक तो स्थूल लड़ाई हुई, एक सूक्ष्म लड़ाई हुई और एक अति सूक्ष्म लड़ाई है। अति सूक्ष्म का मतलब यह है कि अगर हमारे मन में कोई चाह भी है कि ऐसा होना चाहिए, तो बहुत गहरे में लड़ाई चलती रहेगी। हम नहीं कहते कि कांटा बुरा है, लेकिन बहुत गहरे में मन यह है कि कांटा न होता और फूल होता तो अच्छा होता। अगर इतना भी भीतर की किसी पर्त पर भाव है तो लड़ाई जारी रहेगी। आप लड़ रहे हैं। आप कांटे को स्वीकार नहीं कर पाए हैं।

तो मेरे लिए ध्यान का मतलब हैः संपूर्ण स्वीकृति। स्थूल लड़ाई नहीं, सूक्ष्म लड़ाई नहीं, अति भावों की सूक्ष्म लड़ाई भी नहीं।

घड़ी, दो घड़ी के लिए चौबीस घंटे में इस तरह छोड़ने लगें अपने को। इस छोड़ने से जैसे-जैसे छोड़ना सरल होगा... एकदम से छोड़ना बहुत कठिन होता है। क्योंकि हम इतने लड़ रहे हैं कि हम भूल ही गए हैं कि न लड़े कैसे रहें।

अगर एक पति-पत्नी को हम कहें कि चौबीस घंटे बिना लड़े इस घर में रह जाओ, तो रह सकते हैं बिना लड़े। लेकिन उनसे कहें कि लड़ने का भाव ही मत उठने दो; निंदा, प्रशंसा भी मत करो; तो कठिनाई शुरू हो जाएगी। और उनसे अगर हम यह कहें कि यह सोचो ही मत कि पत्नी कैसी है, कि पति कैसा है; जैसा है--है। तब और कठिन हो जाता है। न लड़ना बहुत आसान है कि चौबीस घंटे का कस्द कर लिया कि नहीं लड़ेंगे। तो एक-दूसरे से बच कर जा रहे हैं। लेकिन लड़ाई जारी है, क्योंकि उस बच कर जाने में भी लड़ाई चल रही है। नहीं बोल रहे हैं कि कहीं लड़ाई न हो जाए, तो न बोलना लड़ाई हो गई। ऐसी बातें नहीं उठा रहे हैं जिनमें लड़ाई हो जाए, तो लड़ाई जारी है।

लेकिन सूक्ष्म तल पर अगर हम कोई भाव और रुख ले रहे हैं--देख रहा हूं मैं कि यह जो पत्नी है, टेबल फिर वहीं रखे दे रही है जहां कि हजार दफे कहा है कि मत रखना। चूंकि लड़ना नहीं है, नहीं लड़ रहे। और ठीक है, स्वीकार भी कर रहे हैं कि टेबल अब जहां रखनी है रख दो, कोई बात नहीं, क्योंकि चौबीस घंटे लड़ना नहीं है। लेकिन मन में यह भाव आ रहा है कि वही गलती फिर की जा रही है जो कि सदा मना की गई है। तो वह लड़ाई जारी है। अब वह प्रकट नहीं हो रही, लेकिन लड़ाई जारी है।

प्रश्नः तो उसको देखते रहना चाहिए? उसको महसूस करते रहना चाहिए? उस समय क्या विचार रहना चाहिए? उस समय क्या फीलिंग रहनी चाहिए?

नहीं, तुम लाने की कोई कोशिश ही मत करना किसी फीलिंग की। तुम लाए तो लड़ाई शुरू हो गई। तुम्हारा लाना ही नहीं है तुम्हें कुछ, जो हो रहा है वह है। तुम्हारी तरफ से कुछ भी मत करना, जो होता हो उसे होने देना। यही तकलीफ है, यही तकलीफ है कि हम सोचते हैं कि हम क्या करें फिर? नहीं; आपने कुछ किया कि लड़ाई शुरू हुई। क्योंकि करने का मतलब ही यह होता है कि कुछ था जो नहीं

होना था वह हो रहा था, कुछ था जो होना था और नहीं हो रहा था, हम उसको बदल रहे हैं। लड़ाई शुरू हो गई।

न, मैं यह कह रहा हूं कि तुम कुछ करना ही मत। जो हो, होने देना। लेट गो की हालत रखना। अपनी तरफ से डूइंग की हालत नहीं है, लेट गो की हालत है। जैसे समझ लो कि मैं मर जाऊं इस कमरे में, फिर कमरा कैसा चलेगा यह। लोग यहां से गुजरेंगे, टेबल कहीं रखी जाएगी, फोन की घंटी बजेगी, सब होगा। लेकिन मैं क्या करूंगा?

मैं नसरुद्दीन की एक कहानी कहता रहता हूं। उसने अपनी पत्नी से एक बार पूछा कि कई लोग मरते जा रहे हैं, मेरी समझ में यह नहीं आता कि लोग मर कैसे जाते हैं? और अगर कभी मैं मर जाऊं तो मैं कैसे पहचानूंगा कि मैं मर गया हूं? तो तुझे अगर कुछ पता हो तो मुझे बता दे। समझूंगा कैसे कि मैं मर गया हूं?

तो उसकी पत्नी ने कहा, इसमें कुछ समझने की बात है? हाथ-पैर ठंडे हो जाएंगे!

नसरुद्दीन गया था जंगल में लकड़ी काटने। सर्द थी सुबह, बर्फ पड़ रही थी, उसके हाथ-पैर ठंडे हो गए। तो उसने सोचा कि लगता है कि अब मैं मर रहा हूं, क्योंकि हाथ-पैर ठंडे हो रहे हैं। और लक्षण एक ही बताया गया थाः जब हाथ-पैर ठंडे हो जाएं।

जब वे होते ही चले गए ठंडे और उसकी कुल्हाड़ी भी छूटने लगी हाथ से, उसने कहा, अब तो पक्का ही है। तो उसने मरते हुए लोगों को देखा था कि मरा हुआ आदमी खड़ा नहीं रहता, लेटा रहता है, तो वह लेट गया। जब वह लेट गया तो और सब ठंडा होने लगा। क्योंकि काम कर रहा था तो थोड़ा गर्म था। तो और सब ठंडा होने पर उसने कहा, अब ठीक है, अब तो आखिरी वक्त आ गया, अब मर गए। जब पूरा ठंडा हो गया तो उसने समझा कि मर गए। तो स्वभावतः मरा हुआ आदमी किसी को चिल्लाता नहीं, किसी से बोलता नहीं, किसी को देख नहीं सकता। तो उसने आंख बंद कर ली, चिल्लाना बंद कर दिया। उसने कहा, अब कोई सार ही नहीं, जब मर ही गए और लक्षण पूरा हो गया।

चार आदमी निकलते थे रास्ते से, उन्होंने देखा कि कोई आदमी मर गया। तो उन्होंने अरथी बनाई उसकी। उसने सोचा कि मुर्दे की तो अरथी बनती ही है, तो बन रही है। कई बार अरथी ठीक नहीं भी बन रही थी, क्योंकि उन चारों को कोई इंतजाम नहीं था, तो कई बार उसे लगा कि सुझाव दे दूं कि जरा ऐसा बांधो डंडा। लेकिन उसने कहा कि मुर्दे कुछ... यह बात ही नहीं करनी चाहिए, क्योंकि जो आदमी मर ही गया वह कैसे बताएगा! इसलिए उसने जैसी भी बनी अरथी बन जाने दी, अरथी पर सवार भी हो गया, अरथी चल पड़ी।

लेकिन वे चारों परदेसी थे, चौरस्ते पर पहुंचे तो उनको सवाल उठा कि मरघट कहां है इस गांव का? उसको मालूम था, लेकिन उसने सोचा कि...। उन चारों ने सोचा कि बड़ी सर्दी है, बर्फ पड़ रही है, मरघट कहां है? अब कोई निकले राहगीर तो पूछ लें। बड़ी देर हो गई, कोई राहगीर न निकला। तो नसरुद्दीन से रहा न गया, बड़ी देर तो उसने खुद को सम्हाला, फिर उसने कहा कि कोई राहगीर ही नहीं निकल रहा, ऐसे इमरजेंसी के क्षण में तो मुर्दा भी बोले तो कोई हर्जा नहीं है इसमें। तो उसने कहा कि जब मैं जिंदा हुआ करता था तब लोग बाएं तरफ जाते थे मरघट के लिए। उसने कहा कि जब मैं जिंदा हुआ करता था तब बाएं तरफ जाते थे। फिर इतना कह कर वह अपनी जगह पर लेट गया। तो उन्होंने कहा कि अरे मूरख, अगर तू बोल ही रहा है, तो हमें क्यों परेशानी में डाले हुए है!

यह जो एक घंटे भर नसरुद्दीन ने किया, यह ध्यान में होगा, होना चाहिए। यानी आपको कुछ करना ही नहीं है, इमरजेंसी भी आ जाए तो भी नहीं बताना है कि यह हो रहा है। आपको सब कुछ छोड़ ही देना है। जो हो रहा है, हो रहा है। जब आप सब छोड़ देंगे और जो... होता तो रहेगा ही, बंद तो नहीं हो जाने वाला--विचार चलते रहेंगे, आवाज कानों में पड़ती रहेगी, हृदय धड़कता रहेगा, श्वास चलती रहेगी, पैर में कीड़ा काटेगा तो पता चलेगा, पैर जाम हो जाएगा तो पता चलेगा, करवट बदलने का मन होगा--तो रोकना मत, करवट बदलने का मन हो तो करवट को करवट लेने देना, पैर-हाथ कीड़ी को हटाना चाहे तो हटाने देना। न तो अपनी तरफ से हटाना, न अपनी तरफ से रोकना।

मेरा मतलब समझ रहे हैं न ? यानी अपनी तरफ से कुछ मत करना। अगर हाथ हटाना चाहे तो हटा देने देना और न हटाना चाहे तो पड़े रहने देना। तो सारी स्थिति को पूरी तरह स्वीकार कर लेना है। सब होता रहेगा। लेकिन जब सब होता रहे और हम सब स्वीकार कर लें, तो एक बहुत नई चेतना का जन्म शुरू होता है। तत्काल तुम साक्षी हो जाते हो--तत्काल ! क्योंकि जैसे ही तुम कर्ता नहीं रहते, तुम साक्षी हो जाते हो। कोई उपाय ही नहीं है दूसरा। यह ट्रांसफार्मेशन आटोमेटिक है।

लोग सोचते हैं कि साक्षी होना पड़ेगा।

साक्षी कोई हो ही नहीं सकता। वह तो जब कर्ता नहीं रह जाता तो होगा क्या ? अब जैसे कि नसरुद्दीन की अरथी बांधी जा रही है; अब वह क्या करेगा बेचारा ? देख रहा है; साक्षी ही है भर; करने की तो बात ही खत्म हो गई, क्योंकि वह आदमी मर गया है। जिस क्षण तुम्हारे कर्ता का भाव चला जाता है, उसी क्षण तुम्हारे साक्षी का भाव आविर्भूत हो जाता है। यह सहज होता है।

इसलिए साक्षी होना कोई कर्म नहीं, कृत्य नहीं। और वह साक्षी हो जाना ध्यान है। साक्षी हो जाना ध्यान है, इससे ज्यादा ध्यान कुछ भी नहीं है।

इसलिए एकाग्रता तो कभी ध्यान नहीं; क्योंकि तुम कर्ता हो, तुम कर रहे हो। तुम्हारा किया हुआ तुमसे बड़ा नहीं होने वाला है। तुम परेशान हो, दुखी हो; तुम्हारा किया हुआ भी परेशानी होगी, दुख होगा। अगर मैं स्टुपिड आदमी हूं, मूढ़ आदमी हूं, तो मेरी एकाग्रता भी मूढ़ता ही होगी। मैं ही एकाग्र करूंगा न ! एकाग्रता कोई और तो नहीं करेगा। मैं एक मूढ़ आदमी हूं, मैं एकाग्रता करता हूं, तो एक मूरख एकाग्र हो जाएगा। और क्या होने वाला है ? और एकाग्र मूरख और खतरनाक है। अगर तुम दुखी हो तो दुखी होना ही एकाग्रता बन जाएगी तुम्हारी, दुख पर ही तुम एकाग्र हो जाओगे, जो और मुश्किल है। एकाग्रता कभी भी तुम्हें अपने से ऊपर नहीं ले जा सकती; ट्रांसेनडेंस नहीं है उसमें संभव। क्योंकि तुम ही करोगे, तो आगे कैसे जाओगे ?

लेकिन साक्षीभाव जो है वह तुम्हारा कृत्य नहीं है। तुम हो ही नहीं उसमें। वह हैपनिंग है। तुम तो अचानक पाते हो कि जिस क्षण वह स्थिति आ जाती है कि तुम कर्ता नहीं रहे, तुम अचानक पाते हो कि तुम साक्षी हो गए हो। इस होने में कोई यात्रा नहीं करनी पड़ती। यानी कर्ता होने से साक्षी होने तक तुम्हें जाना नहीं पड़ता। बस अचानक एक क्षण पहले तुम कर्ता थे और अचानक एक क्षण बाद तुम पाते हो कि कर्ता खो गया है और मैं सिर्फ साक्षी रह गया हूं।

यह जो दशा है यह ध्यान है। और इसलिए ध्यान करने की कोशिश मत करना। ध्यान हो सके, इस हालत में अपने को छोड़ना है। ध्यान होगा, आपको तो सिर्फ अपने को इस हालत में छोड़ देना है कि वह हो जाए। सूरज निकला है और मैंने अपना दरवाजा खुला छोड़ दिया है। सूरज निकलेगा, रोशनी भीतर आ जाएगी, वह मुझे लानी नहीं पड़ेगी।

लेकिन एक बड़े मजे की बात है कि मैं सूरज की रोशनी बांध कर कमरे के भीतर तो नहीं ला सकता, लेकिन दरवाजा बंद करके सूरज की रोशनी बाहर रोक सकता हूं। बाहर रोकने में कठिनाई नहीं है, दरवाजा बंद है तो रुक जाएगी।

तो तुम ध्यान को होने से रोक सकते हो, रोक रहे हो, लेकिन ध्यान को ला नहीं सकते। हमारी जो सारी तकलीफ है वह बहुत उलटी है। जो असलियत है वह यह है कि जब कोई मुझसे पूछता है कि ध्यान नहीं हो रहा है, तो वह उलटी ही बात पूछ रहा है। वह असल में प्राणपण से चेष्टा कर रहा है कि कहीं ध्यान न हो जाए। पूरी जिंदगी लगा रहा है कि ध्यान न हो जाए। जन्म-जन्म उसने खराब किए हैं कि कहीं ध्यान न हो जाए। और ध्यान के लिए उसने हजार तरह के बैरियर खड़े किए हैं कि वह हो न जाए।

कहीं मैं साक्षी न हो जाऊं, इसके लिए तुम सब इंतजाम किए हुए बैठे हो। और फिर जब सुनते हो किसी से कि साक्षी होने में बड़ा आनंद है, तब तुम सोचते होः चलो साक्षी भी हो जाएं। तो साक्षी होने की भी कोशिश करते हो। और वह तुम्हारा साक्षी से रोकने का पूरा इंतजाम जारी है, उसमें कोई फर्क पड़ता नहीं। उसी इंतजाम के भीतर तुम साक्षी भी होना चाहते हो। यह नहीं होगा।

तो घड़ी, दो घड़ी के लिए अपने को पूरा छोड़ो और जो हो रहा है उसे पूरा स्वीकार कर लो। फिर कुछ होगा। वह कुछ होना ध्यान है। और इसलिए जिनको ध्यान

मिलेगा, जिनको हो जाएगा, वे यह नहीं कह सकेंगे कि मैंने किया। नहीं कह सकेंगे। अगर कहते हों तो समझ लेना अभी नहीं हुआ।

और इसीलिए तो बेचारा वैसा आदमी कहता हैः प्रभु की कृपा से! उसका कोई और मतलब नहीं है। कोई प्रभु कृपा वगैरह नहीं करता। मगर उसकी तकलीफ है। उसकी तकलीफ यह है कि उसके द्वारा तो हुआ नहीं। वह कहां कहे? किससे कहे? हो तो गया है। उसके द्वारा हुआ नहीं। तो किसने किया है--बताने जाइए तो उसकी बड़ी मुश्किल है। तो वह कहता है, प्रभु कृपा से हुआ है। यह "प्रभु कृपा से हुआ है" इसका कुल मतलब इतना है कि मेरे द्वारा नहीं हुआ है। प्रभु कृपा से नहीं हुआ है। क्योंकि प्रभु कृपा का मतलब तो फिर यह हो जाएगाः प्रभु किसी पर कम कृपालु है, किसी पर ज्यादा है। तब तो बड़ी गड़बड़ हो जाएगी, उसमें प्रभु पर बड़ा लांछन लगेगा।

प्रश्नः अभी एक प्रश्न था उसमें आपने यही कहा हैः प्रभु की इच्छा से! मैं तो कुछ करता नहीं हूं, सब प्रभु ही करते हैं। और ऊपर से आपने यह कहा कि मेरा ऑब्जेक्ट जो है विद्रोह है। मतलब मैं जो कर रहा हूं, सिर्फ लोगों की चेतना के लिए... या जो पुराना रूढ़िवाद चला है, उसके एकदम अपोजिट में चला जा रहा हूं; इसलिए नेचरल है कि उसको हटाने के लिए तो संघर्ष करना ही पड़े। मैंने इसीलिए ही, मैंने इसीलिए पत्र आपको लिखा हूं कि भई आज एक तरफ तो आप यह कह रहे हैं...

तुम जरा जल्दी पत्र लिख दिए। क्योंकि मामला ऐसा है, मामला ऐसा है--जिंदगी इतनी जटिल है, जिंदगी इतनी जटिल है और हमारे निर्णय सब सरल होते हैं। और इसलिए हम तालमेल नहीं बिठा पाते। लगता है। तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ लिया है। उसमें लगता ही है कि एक तरफ मैं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह उठाना चाहता हूं और दूसरी तरफ मैं कह रहा हूं कि परमात्मा जो करवा रहा है वह मैं कर रहा हूं। तो विरोध दिखता है, है नहीं।

प्रश्नः अब विरोध नहीं रहा। अभी आपने जो जवाब दिया तो अब विरोध नहीं रहा।

हां, समझ में आई न बात! विरोध नहीं है। क्योंकि जब मैं यह कह रहा हूं कि मैं विद्रोह कर रहा हूं, यह भी परमात्मा ही कह रहा है मेरे हिसाब में तो। इसलिए विरोध नहीं है। और अगर तुम्हारे हिसाब में ऐसा लगता है कि यह आप ही कह रहे हो, तो दूसरा भी मैं ही कह रहा हूं, तब भी कोई फर्क नहीं है, तब भी विरोध नहीं होता है। यानी मैं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह कर रहा हूं, अगर आप मानो कि यह आप ही कह रहे हो, हम किसी परमात्मा को नहीं मानते। तो दूसरी बात मैं कह रहा हूं कि यह परमात्मा कर रहा है। यह भी मैं ही कह रहा हूं। तब भी कोई विरोध नहीं है। तुम्हारी तरफ से भी विरोध नहीं है। विरोध इसलिए होता है कि एक बात मेरी तरफ से ले लेते हो और एक तुम्हारी तरफ से ले लेते हो, तब विरोध होता है। अगर तुम भी अपनी दोनों ही बातें लो तो विरोध नहीं है।

प्रश्नः मैं समझा नहीं।

मेरा मतलब यह है कि मैं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं। अगर तुम्हें यह लगता है कि यह आप ही कह रहे हो और दूसरी तरफ आप कहते हो कि जो करवा रहा है वह परमात्मा करवा रहा है। तो विरोध दिखता है इसमें। क्योंकि अगर परमात्मा करवा रहा है, तो फिर आप ऐसा क्यों कह रहे हैं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं? मेरी तरफ से इसलिए विरोध नहीं है, क्योंकि मैं कहता हूं कि यह भी परमात्मा ही कहला रहा है।

प्रश्नः वह वहां पर आपने एक्सप्लेन कर दिया इस बात को।

हां, मेरे लिए इसमें कोई फर्क नहीं है दोनों बातों में। एक ही बात है। यानी यह भी मैं अपनी तरफ से नहीं कह रहा हूं कि मैं विद्रोह जगा रहा हूं।

प्रश्नः एक जनरल जेंट्री को...

न, न, न, वह जनरल जेंट्री की बात मत करो। वह है ही नहीं कहीं। वह है ही नहीं कहीं। तुम हो, मैं हूं; ये हैं, मैं हूं। जनरल जेंट्री कहीं भी नहीं है। वह है ही नहीं कहीं। मैं तो इधर पंद्रह साल से भटकता हूं, वह मुझे मिलती नहीं। सीधे आदमी हैं और सीधी बात करनी चाहिए। वह जनरल जेंट्री बहुत दिक्कत दे देती है। फिर उसको बीच में लेकर बड़ा मुश्किल हो जाता है काम करना। तुम्हारी बात मेरे ख्याल में आती है, मेरी बात तुम्हें, बात खत्म हो गई। जनरल जेंट्री जब मुझे मिलेगी उससे मैं बात कर लूंगा।

मेरा मतलब समझे न!

प्रश्नः जनरल में ही तो आ गए न हम सब।

नहीं, अगर तुम्हारी समझ में आ गया तो जनरल को भी समझ में आ सकता है फिर। यानी मैं जो यह कह रहा हूं, मैं यह कह रहा हूं कि जैसे ही ध्यान का विस्फोट होगा--कल तक तुमने जहां अपने को कर्ता माना था, कल तक सब काम तुम्हारा कर्तृत्व का था--जैसे ही ध्यान का विस्फोट होगा, काम सब जारी रहेंगे, लेकिन कर्ता विदा हो जाएगा। और अब तुम्हारी बड़ी तकलीफ होगी कि तुम क्या कहो कि कैसे कर रहे हो।

कल तक तुमने अपनी पत्नी को कहा था कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, अपने बेटे से कहा था कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। अगर ध्यान का विस्फोट हो गया तो तुम कहोगे कि मैं नहीं जानता, यह प्रेम तेरी तरफ बहता है, मुझे पता नहीं। एक रास्ता तो यह है--कि यह प्रेम हो रहा है; मुझे पता नहीं है। मैं करता हूं, अब मैं नहीं कह सकता। मैंने कभी किया नहीं प्रेम, यह हुआ है। एक तो रास्ता यह है।

यह सेक्युलर हुआ। यानी इसमें परमात्मा को बीच में नहीं लिया गया। समझे न! हम कहते हैं कि प्रेम जो है वह घटता है, कोई करता नहीं। यह सेक्युलर हुई बात। इसमें धर्म को बीच में लेने की जरूरत नहीं समझी गई। यानी यह उसी बात को गैर-धार्मिक ढंग से कहने की व्यवस्था हुई।

लेकिन अगर इसमें और गहराई बढ़ जाए, और गहराई बढ़ जाए, तो तुम्हें यह पता लगेगा कि अगर मैं यह कहता हूं कि मैंने प्रेम नहीं किया और प्रेम घटा है, तो इसके दो मतलब हो गए। या तो प्रेम सिर्फ एक्सीडेंट है, जिसके पीछे कुछ भी नहीं है, कोई सोर्स नहीं है। जो कि बहुत इल्लाजिकल और अनसाइंटिफिक है। क्योंकि अगर घट रही है कोई चीज तो भी कोई ओरिजिनल सोर्स होना चाहिए। नहीं तो घट नहीं सकती। कहां से घटेगी? कैसे घटेगी?

तो धर्म की जो दृष्टि है वह और गहरी है, वह घटना पर ही नहीं रुकती; वह इस पर रुकती है कि मैंने तो प्रेम नहीं किया और प्रेम हो रहा है। और तुमको भी मैं प्रेम करते देखता हूं और मैं देखता हूं कि तुमने प्रेम नहीं किया, प्रेम हो रहा है। और उनको भी प्रेम करते देखता हूं और देखता हूं कि प्रेम हो रहा है। तब इस समग्र का जो इकट्ठा नाम है--धार्मिक--वह परमात्मा है। तब हम समग्र को कह देते हैं कि समग्र की तरफ से हो रहा है। इसमें व्यक्ति नहीं कर रहे हैं। वह जो समग्रीभूत चेतना है, सब जहां इकट्ठे हैं, वहीं से कुछ हो रहा है।

एक वृक्ष बड़ा हो रहा है। अगर हम इस वृक्ष से पूछ सकें और वृक्ष उत्तर दे सके, तो दो ही उत्तर हो सकते हैं। या तो वह यह कहे कि मैं बड़ा हो रहा हूं। जो कि जरा ज्यादा होगा कहना। क्योंकि फिर सूरज का क्या होगा? अगर सूरज न उगे तो वृक्ष बड़ा न हो। हवाओं का क्या होगा? अगर हवाएं न बहें तो वृक्ष बड़ा न हो। जमीन का क्या होगा? अगर जमीन पानी न दे तो वृक्ष बड़ा न हो। लेकिन अगर वृक्ष को भी चेतना आ जाए तो वह यह कहेगा कि मैं बड़ा हो रहा हूं।

लेकिन अगर वृक्ष थोड़ा समझे तो शायद वह कहे कि मैं बड़ा नहीं हो रहा हूं, बड़े होने की घटना घट रही है। लेकिन तब इसमें वह कोई सोर्स नहीं पकड़ पाए,

कहां से घट रही है? अगर और उसकी समझ गहरी हो जाए तो शायद वह यह कहे कि समस्त जगत मुझमें बड़ा हो रहा है। समस्त जगत--सूरज भी, पानी भी, जमीन भी, हवा भी, आग भी, सब मुझमें बड़े हो रहे हैं।

अब सारे जगत की अगर एक-एक चीज को गिनाने जाएं तो बहुत असंभव होगा। सब बड़े हो रहे हैं। करोड़ों-करोड़ों मील दूर बैठा एक तारा भी उस वृक्ष के बड़े होने में हाथ बंटा रहा है। आकाश में उड़ती हुई बदली भी हाथ बंटा रही है। दस करोड़ मील दूर बैठा सूरज भी हाथ बंटा रहा है। एक बच्चा सुबह आकर उस वृक्ष को प्रेम करता है और पानी डाल जाता है, वह भी हाथ बंटा रहा है। एक बकरी उस वृक्ष की टहनी काट डालती है, टहनी में से चार टहनियां निकल आती हैं, वह भी हाथ बंटा रही है। अगर हम इन सारी चीजों को गिनाएं तो सेक्युलर ढंग से भी कहा जा सकता है।

लेकिन सारी चीजों को गिनाना बिल्कुल बेमानी है। इसलिए धार्मिक आदमी ने एक शब्द निकाल लिया--परमात्मा। परमात्मा का मतलब हैः वह सब जो गिना नहीं जा सकता, वह सब हाथ बंटा रहा है।

तो जब मैं यह कह रहा हूं कि वही करवा रहा है, तो उसका मतलब यह है कि यह सब जो है यह सब का होना ही होना है; हम इसमें व्यक्ति की हैसियत से नहीं कुछ कर पा रहे हैं। लेकिन ध्यान की घटना न घटे तो यह दिखाई भी नहीं पड़ेगा। तब तो दिखाई पड़ेगा कि मैं कर रहा हूं।

और इसीलिए ध्यान के पहले अशांति है। क्योंकि वह मैं कर रहा हूं; तो फिर जब न होगा तो मुझसे नहीं हुआ। हारूंगा तो मैं हारा और जीतूंगा तो मैं जीता। तो वह मैं चिंताएं इकट्ठी कर लेगा। ईगो जो है वह एंग्जाइटी का केंद्र है, सारी चिंता का केंद्र मैं है। क्योंकि आज मैं कहूंगा कि हां, मैं जीत गया! और कल हार जाऊंगा तो फिर मुझे कहना पड़ेगा मैं हार गया। तो जब जीत कर अकड़ कर निकला था सड़क पर तो फिर हार कर रोता हुआ निकलना पड़ेगा। तो वह सारी तकलीफ खड़ी होगी।

लेकिन घटना के बाद, हैपनिंग के बाद, ध्यान के बाद वह एवोपरेट हो गया मैं। अब हो रहा है। अब हारे तो परमात्मा हारता है और जीते तो परमात्मा जीतता है। अपना कुछ लेना-देना न रहा। अपन ही न रहे। इसलिए ऐसे आदमी को सुखी और दुखी होने के दोनों उपाय न रहे। और जब सुखी और दुखी होने का कोई उपाय नहीं रह जाता, तब जो शेष रह जाता है वही आनंद है। सुखी-दुखी होने का जब कोई उपाय नहीं रह जाता तब भी तो कुछ शेष तो रह ही जाएगा, मैं तो रहूंगा ही, सब रहेगा, लेकिन तब जो स्थिति होगी वह आनंद की है या शांति की है या मुक्ति की है।

तो इसलिए ध्यान जो है वह अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसके बिना मुक्ति, आनंद और शांति का कभी कोई पता नहीं चल सकता। क्योंकि उसके बिना अहंकार नहीं टूटता। और अहंकार टूट जाए तो क्या कहिएगा? क्या कहिएगा, कौन करवा रहा है?

तो एक तो रास्ता यह है कि हो रहा है, कोई भी नहीं करवा रहा। कहने में हर्जा नहीं है। मैं कोई इनकार नहीं करता। इसमें भी कुछ हर्जा नहीं है। लेकिन जितनी गहरी दृष्टि बढ़ेगी वैसे दिखाई पड़ेगा कि कोई नहीं करवा रहा, ऐसा कहना बहुत अवैज्ञानिक है। समष्टि, दि कलेक्टिव भागीदार है। तो परमात्मा जो है वह आमतौर से हम व्यक्तिवाची समझ लेते हैं, वह गलत है। वह व्यक्तिवाची नहीं है। असल में, परमात्मा एकवचन में है ही नहीं; बाइ इट्स वेरी नेचर प्लूरल है, सिंगुलर नहीं है वह। इसलिए परमात्मा शब्द का बहुवचन नहीं बनाया जा सकता। "परमात्माओं" ऐसा नहीं बनाया जा सकता। कोई मतलब ही नहीं है, उसका कोई मतलब नहीं है। परमात्मा एकवचन में ही बोलना पड़े, क्योंकि वह एकवचन है नहीं, वह कलेक्टिव की खबर है, समष्टि की; वह सब जो है, उसकी खबर है। अब सब में सब आ गया। इसलिए अब और आगे बचने को नहीं रहा कि हम परमात्माओं, गॉड्स, ऐसा उपयोग गलत है।

इसीलिए अंग्रेजी जैसी भाषाओं के पास परमात्मा के लिए ठीक शब्द नहीं है। उनका जो गॉड है वह गॉड्स भी हो सकता है। इसलिए वह देवता का पर्यायवाची है, परमात्मा का पर्यायवाची नहीं है। देवता बहुवचन में हो सकते हैं; परमात्मा नहीं। वह शब्द जो है वह समष्टि का, सबका, दि होल। अंग्रेजी का "होली" शब्द ज्यादा करीब है परमात्मा के, क्योंकि वह "होल" से बनता है। होल

से ही होली बनता है। होली शब्द ज्यादा ठीक है, वह परमात्मा का अर्थ रखता है। लेकिन उसका हमने मतलब पवित्रता और दूसरी बातें ले लीं, अब वह ठीक नहीं है। दि होली, वह निकट से पकड़ता है बात को, कि वह जो समष्टि है, इकट्ठा जहां सब हो गया है। उस इकट्ठे को कोई नाम हम देना चाहें तो कोई नाम दिया जा सकता है, वह नाम परमात्मा है।

यानी जब मैं यह कह रहा हूं कि मैं नहीं कर रहा, तो मैं यह कह रहा हूं कि सब कर रहे हैं, उस करने में मैं सिर्फ एक हिस्सा हूं, उससे ज्यादा नहीं। और यह ख्याल में आ जाए तो सारी चिंता गई। क्योंकि तब न हार है, तब न जीत है; तब न जन्म है, तब न मरण है। क्योंकि कौन मरेगा, कौन जीएगा--सब तो सदा है। वह व्यक्ति मरता और जीता है--तो वह गया, वह ध्यान में डूब गया, खतम हो गया।

तो ध्यान को करने की कोशिश मत करना। इतना ख्याल लोगे तो बहुत अच्छा होगा।

प्रश्नः पर इसके साथ ही, अगर किसी के मन में यह विचार है कि भगवान जो करता है, देखता जाता है। सब इन्सान उसकी एक आदत बन गई है कि जो हो रहा है ठीक है, साक्षी बन जाता है। लेकिन जब वह एक भी आदमी देखे कि वह गलत बोल रहा है और वह रोक देता है उसको कि यह गलत है बात। कठोर शब्द उससे निकल जाते हैं। तो सब लोग उससे बोलते हैं, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था। क्योंकि तुमने इतने कठोर शब्द कह कर उसका दिल दुखाया। लेकिन मैं तो यह समझती हूं कि यह बात जो है निकलवाई गई है भगवान की तरफ से। कही गई है कि यह गलत है।

नहीं, अगर यह भगवान से निकलवाई गई है, तो वह जो तुम्हारी गरदन दबा कर कह रहे हैं कि "ये कठोर शब्द निकले" वह भगवान से नहीं निकलवाए गए? मामला खतम ही है, उसमें क्या दिक्कत है! तुम्हारी तो भगवान से निकलवाई गई है और यह जो दूसरे आपसे कह रहे हैं कि तुमने गाली देकर बहुत बुरा किया, यह किससे निकलवाई गई है? इनको तुम छोड़ देती हो भगवान के बाहर। तब फिर बेईमानी हो जाती है, तब बेईमानी हो जाती है। यही तो बेईमानी चल रही है पूरे वक्त। और जब सभी भगवान से निकलवाया गया है तब क्या सवाल है?

प्रश्नः नहीं, जो हो रहा है, आटोमेटिक कहलवाया गया है।

न, न, न, उनसे भी आटोमेटिक हो रहा है। तुम्हीं से आटोमेटिक हो रहा है? और वह जो आदमी ने बुरा काम किया था, जिसको तुमने गाली दी है, वह उससे भी आटोमेटिक हो रहा है। और ये बेचारे जो तुमसे कह रहे हैं कि तुमने बहुत कठोर शब्द बोल दिए, यह भी आटोमेटिक हो रहा है।

नहीं, हमारी कठिनाई यह है कि साक्षी का हमें पता नहीं है। इसलिए हम मान लेते हैं कि अगर साक्षी हो जाएं। अगर का सवाल नहीं है वहां; वह तो पता होगा तो फिर ये तीनों बातें ही एक हो गईं, इसमें कुछ झंझट न रही, इसमें कोई झंझट न रही। लेकिन हम मान कर सवाल उठाते हैं। हम कहते हैं कि अगर साक्षी हो गए और फिर ऐसा हुआ। तो अभी साक्षी तो हुए नहीं, इसलिए वह जो फिर ऐसा हुआ जो आप सोच रही हैं वह साक्षी होने के पहले का सोचना है। साक्षी हो गए तब क्या बात है? तब कोई बात ही नहीं है। तब कोई सवाल ही नहीं है।

महाभारत में एक बहुत मजेदार बात आती है। महाभारत में एक बात आती है कि दिन भर लड़ाई चलती, दिन भर लड़ते। सांझ जब लड़ाई बंद हो जाती तो सब एक-दूसरे के शिविरों में जाकर गपशप करते। वे जो दिन भर लड़े थे मैदान पर, दुश्मन थे, और जी-जान लगा दी थी एक-दूसरे को मारने-मिटाने में, जब बिगुल बज जाता और लड़ाई बंद हो जाती, तो फिर सब एक-दूसरे के शिविर में जाकर गपशप भी होती, बैठ कर बातचीत भी होती, रात आधी रात तक सब चर्चा भी चलती कि कौन मर गया, कौन बच गया। ये वही लोग जो दिन भर बिल्कुल जी-जान से लड़े। बड़े अदभुत लोग हैं। क्योंकि जिससे हम दिन भर लड़े हैं उससे शाम को गपशप करने थोड़े ही जाएंगे। और जिससे हमने शाम को गपशप की है उससे दूसरे दिन लड़ेंगे कैसे!

पर यह हो सकता है। पर यह जिस तल पर होता है उसको मान कर नहीं चलना चाहिए। उसको मान कर नहीं चलना चाहिए कि हां, साक्षी हो गए। ऐसा मान कर नहीं सवाल बनाएं। साक्षी हो जाओ और फिर सवाल लाना। क्योंकि साक्षी कभी कोई

सवाल नहीं लाया। असल में, साक्षी के लिए सवाल ही न बचा। प्रश्न तो उठते हैं हमारे कर्ता होने से। साक्षी अगर हो गए तो जो है वह है, अब प्रश्न का क्या सवाल है! इसको ठीक से समझ लेना जरूरी है। हमारे सारे प्रश्न हमारे कर्ता के भाव से उठते हैं। अगर कर्ता नहीं है तो प्रश्न क्या है? जो है--है। मैंने तो किया नहीं है। तो प्रश्न कैसे उठे?

कल मुझसे किसी ने एक बहुत बढ़िया बात पूछी। कल मुझसे किसी ने पूछा कि आपने कभी किसी से प्रश्न पूछा?

मैंने तो नहीं पूछा। अपनी पूरी जिंदगी में नहीं पूछा। ऐसा नहीं कि अभी नहीं। मैंने कभी किसी से प्रश्न पूछा ही नहीं। कभी मेरे घर के लोगों ने मुझे कहा भी हो कि मुनि आए हैं, कोई संन्यासी आए हैं, कोई स्वामी आए हैं। छोटा भी था तो मैं कहा, मैं चलता हूं। मेरे पिता मुझे कई दफा कहें कि इतनी बातचीत करते हो, कुछ पूछ लो! मैं कहूं, मैं क्यों पूछूं? क्योंकि अगर मैं पूछूं, कहूं कि ईश्वर है? और वह संन्यासी कह दे, है। तो मुझे क्या फर्क पड़ेगा? और वह कह दे, नहीं है। तो मुझे क्या फर्क पड़ेगा? यह तो मुझे ही खोजना पड़ेगा। इसके कहने से तो कुछ फर्क नहीं पड़ने वाला। और अगर वह कह दे--है, और झूठ बोल रहा हो, तो मैं कहां पता लगाऊं?

तो मेरे घर के लोग कहते, चार आदमियों से पता लगा सकते हो कि यह आदमी झूठ नहीं बोलता।

मैं उन चार आदमियों का किससे पता लगाऊं कि ये झूठ नहीं बोलते? इसका कोई मतलब नहीं है। एब्सर्ड है। मैं कहां पता लगाता फिरूंगा ऐसा? इसका तो कोई अंत ही नहीं होगा। क्योंकि मैं, संन्यासी झूठ नहीं बोलता, यह चार से पता लगाऊं। और ये चार झूठ नहीं बोलते, यह फिर सोलह से पता लगाऊं। और वे सोलह सच बोल रहे हैं कि झूठ बोल रहे हैं...। इसका कोई अंत नहीं होगा। तो मैंने कहा, मैं पता खुद ही लगा लूंगा। मैं इधर से शुरू करूं, उधर जाने की कोई जरूरत नहीं। किसी से क्या पूछना है!

सारे प्रश्न जो हैं...

प्रश्नः रियलिटी में प्रश्न भी नहीं हैं।

नहीं हैं, नहीं हैं। हो ही नहीं सकते। वहां जो है--है। उसके लिए कोई न कारण दिया जा सकता, न कारण है। तो इसलिए वहां सवाल नहीं है, वहां सवाल नहीं है। लेकिन हमारा जो कर्ता है वह अनरियल है। वह है नहीं। इसलिए वह हर चीज में सवाल उठाता है।

मैं युनिवर्सिटी छोड़ा, तो जिनके घर पर मैं रहता था, उनको आकर मैंने कहा कि आज मैं नौकरी छोड़ आया।

तो उन्होंने कहा कि अरे! तो पूछ तो लेते। इतने दिन से हमारे साथ हो, आठ वर्ष से, तो हमें कम से कम एक बार पूछ तो लेना था।

तो मैंने उनसे पूछा कि जब मैं मरूं, तो आपसे पूछ कर मरूंगा?

उन्होंने कहा, नहीं, मुझसे पूछ कर कैसे मरोगे?

मैं जब जन्मा, आपसे पूछ कर जन्मा?

उन्होंने कहा कि नहीं।

तो मैंने कहा कि फिर क्या पूछना किससे है? असली काम तो बिना ही पूछे हुए जा रहे हैं, तो मैं फालतू काम क्यों पूछने आऊं?

तो उन्होंने कहा कि और कल अगर--नौकरी छोड़ दी है--कल अगर खाना न मिले, रोटी न मिले; भूखा मरना पड़े।

तो मैंने कहा कि मैं भूखा मरूंगा। वह भी मैं किसी से पूछने नहीं जाऊंगा कि मैं भूखा क्यों मर रहा हूं। इसमें क्या पूछने की बात है? मैं समझूंगा कि भूखा मरने का वक्त आ गया, तो भूखा मर रहा हूं।

उन्होंने कहा, अगर कोई मित्र तुम्हें खिलाएगा-पिलाएगा नहीं, ठहरने नहीं देगा--वे बहुत नाराज थे--कोई ठहरने नहीं देगा, कोई खिलाएगा-पिलाएगा नहीं, फिर क्या करोगे?

मैंने कहा कि जो उस वक्त हो जाएगा वह मैं करूंगा। आपसे मैं यह भी पूछने नहीं आऊंगा कि क्या करूं। क्योंकि सवाल यह है, जो मेरी समझ में आएगा

उस वक्त, मैं कर लूंगा। अगर गड्ढा खोदना पड़ेगा तो गड्ढा खोद लूंगा। मिट्टी काटनी पड़ेगी, मिट्टी काटनी पड़ेगी।

उन्होंने कहा कि न तुम गड्ढा खोदोगे, न तुम मिट्टी काटोगे।

तो मैंने कहा कि फिर अगर खाना नहीं मिले, गड्ढा भी न खोद सकूं, मिट्टी भी न काट सकूं, कोई खिलाने वाला भी न हो, तो किसी कुएं में, किसी खाई में कूद जाऊंगा। लेकिन मैं क्या करूंगा, यह मैं पूछने नहीं जाऊंगा किसी से। क्योंकि मेरे होने न होने में किसी के भी उत्तर का कोई संबंध नहीं है।

अगर एक बार हमें यह ख्याल में आ जाए कि हमारे सारे प्रश्न, हमारी एक फाल्स एनटाइटी है, जिससे उठते हैं। वह अपनी रक्षा के लिए सारा इंतजाम कर रही है। वह हजार सवाल उठा रही है, वह हजार व्यवस्थाएं कर रही है--ऐसा हो जाएगा तो क्या करोगे? ऐसा हो जाएगा तो क्या करोगे? ऐसा हो जाएगा तो क्या करोगे? वह सारे इंतजाम में लगी हुई है। और उस सारे इंतजाम में वह मजबूत होती चली जा रही है। अगर ऐसा चलता रहे, तो हर प्रश्न का उत्तर दस नये प्रश्न उठाता चला जाएगा। एंडलेस होगा, उसका कोई अंत नहीं होने वाला।

चीजें जैसी हैं--हैं। एक आदमी ने गाली दी है और तुमने उसको चांटा मारा है और दूसरे ने तुमको चांटा मारा है। चीजें ऐसी हैं, हंसो और घर चले जाओ। इसमें पूछना क्या है? तुमको ही आटोमेटिक हुआ, उसको भी आटोमेटिक हुआ, उसको भी आटोमेटिक हुआ। अब आटोमेटिक कौन करवा रहा है, वह कभी मिल जाए तो उससे पूछना कि यह कैसा आटोमेटिक करवा रहे हो तीन तरह का कि हमको ऐसा हो रहा है, इनको ऐसा हो रहा है, इनको ऐसा हो रहा है। वह कभी मिलेगा नहीं। और जब तुम उसके पास पहुंचोगी, तुम मिट जाओगी। पूछने वाला नहीं रहेगा, कोई उत्तर देने वाला नहीं रहेगा।

लेकिन हम मान कर कर लेते हैं। मान कर बहुत दिक्कत हो जाती है। और सब चीजों में तो चलता है। गणित में हम मान लेते हैं कि एक आदमी बाजार गया, उसने एक दुकान से छह आने के केले खरीदे, तीन दर्जन खरीदे तो कितने आने हुए। हम मान कर चलते हैं। मुझे बहुत मजा आता था। मेरे एक गणित के शिक्षक थे, वे बहुत नाराज हो जाते थे। वे कहते कि मान लो एक आदमी बाजार गया। मैंने कहा कि मानें क्यों? कहां गया बाजार? तो वे कहते कि तुम नासमझ हो, तुमको पता नहीं है। यह गणित है, इसमें मान कर चलना पड़ता है। मैं कहता कि आदमी गया ही नहीं, तो हम क्यों झंझट में पड़ें? आदमी कहां है?

यह सब बहुत आनंदपूर्ण था। वे मुझे क्लास के बाहर कर देते कि तुम बाहर रहो। वे कहते कि उसने तीन दर्जन केले खरीदे। मैं कहता, लेकिन खरीदे कब हैं? कहां खरीदे हैं? लेकिन वे कहते कि गणित इसके आगे नहीं बढ़ सकता, यह गणित में तो मान कर चलना ही पड़ेगा। तो मैं कहता कि जहां मान कर ही चलना है, तो मान लो उसने तीन दर्जन केले खरीदे तो ऐसा क्यों नहीं मानते सरल कि जिसमें कोई ज्यादा झंझट न हो! एक रुपया दर्जन के खरीदे, तीन रुपये में खरीद लिए। जब मान कर ही चलना है, तो पांच आने छह पाई के खरीदे और इतनी परेशानी क्यों करते हो?

तो वे कहते कि तुम समझ ही नहीं पाते हो। उन्होंने मुझे कभी... वह उनकी अकल में नहीं आई यह बात कि मैं मजाक कर रहा हूं। वे यही सदा समझे कि तुमको गणित कभी अकल में आ ही नहीं सकता। तुम गणित समझने के योग्य नहीं, तुम बाहर खड़े हो जाओ क्लास के। तुम पूरी क्लास को खराब कर देते हो। क्योंकि बाकी लड़के भी पूछने लगे कि हां, मानें क्यों?

अगर मानें न तो बहुत मुश्किल हो जाता है। और सारा खेल जो है वह मान कर चल रहा है कि ऐसा हो तो ऐसा हो, ऐसा हो, ऐसा हो। लेकिन वह पहली कड़ी क्यों मानने की जरूरत है? साक्षी हो जाओ, फिर देखना। न कोई बाजार जाता, न कोई केले खरीदता, न कोई हिसाब है। लेकिन वह साक्षी हो जाने के बाद, उसके पहले नहीं। सब गणित उसके पहले है, उसके बाद कोई गणित नहीं है।

सपोज की कोई जगह नहीं है जिंदगी में। और हम पूरा काम सपोज से चल रहे हैं। पति घर लौट रहा है तो वह सपोज करके आ रहा है कि पत्नी यह कहेगी--इतनी देर कहां थे--तो क्या जवाब दूंगा। वह सब सपोजीशन चल रहा है। पत्नी घर पर तैयार हो रही है कि पति आ रहा है, वह जरूर कहेगा कि दफ्तर में काम था इसलिए देर हो गई, तो फोन करके पता लगा लो कि दफ्तर में पांच बजे तक था कि नहीं था। यह सब सपोजीशन चल रहा है। और इस सपोजीशन में बड़ी झंझट हो रही है। क्योंकि

वह दोनों का गणित तैयार है। और वे गणित टकरा जाने वाले हैं, क्योंकि दोनों के अपने सपोजीशंस हैं।

यानी सीधी बात है कि पति देर से आ रहा है, बात खत्म हो गई। अब इसमें और क्या जांच-पड़ताल करनी है! पति देर से आने वाला है, ऐसा आदमी मिला है जो देर से आता है, बात खत्म हो गई।

मगर नहीं, हम जिंदगी जैसी है वैसी स्वीकार नहीं करते। इसलिए हम उसके तरफ चारों तरफ जाल बुनते रहते हैं कि ऐसा होगा, ऐसा होगा। और तब एक दिमाग का जाल है। फिर हम कहते हैं, मन शांत नहीं होता, विचार बहुत चक्कर काटते हैं। और विचार तुम चौबीस घंटे पैदा कर रही हो। सब विचार सपोजीशन पर खड़े हैं। सब विचार! कि मान लो ऐसा हो जाए, बस उसमें सब खेल चल रहा है।

जैसा हो रहा है वैसा हो रहा है, जैसा होगा वैसा होगा। अगर ऐसा ख्याल में आ जाए तो विचार की कहां गुंजाइश है? यह बात समझे न?

प्रश्नः विचार के तरंग भी स्वाभाविक हैं?

जी!

प्रश्नः जिस तरंग में विचार नहीं होता वह भी स्वाभाविक है?

स्वाभाविक तो सभी है।

प्रश्नः लेकिन विचार करके काम करेंगे तो वह अस्वाभाविक हो जाएगा।

हां, हो जाने वाला है। लेकिन वह भी मनुष्य का स्वभाव है। नहीं तो वह भी नहीं हो सकता था। अस्वाभाविक होना भी मनुष्य का स्वभाव है। सिर्फ मनुष्य ही हो सकता है। कुत्ता नहीं हो सकता, बिल्ली नहीं हो सकती। मनुष्य ही हो सकता है। तो मनुष्य के स्वभाव की एक खूबी है कि वह अस्वाभाविक हो सकता है। वह उसका स्वभाव है।

प्रश्नः यह जो सपोजीशन चल रही है यही सब भय का कारण है।

सारे भय का कारण है।

प्रश्नः शिव सेना क्या कर रही है! दूसरे लोग क्या कर रहे हैं! ...

हां-हां, यह सारा भय है, सारा भय है, सारा। हमने कितने सपोज किए हुए हैं--कि स्वर्ग होगा, सपोज स्वर्ग हो, नरक हो, पाप का फल मिलता हो, पुण्य का फल मिलता हो, भगवान हो, जवाब पूछे, कयामत आ जाए, उठाए और पूछे कि तुमने यह क्या किया? वह क्या किया? यह सारा सपोजीशन है।

प्रश्नः रियलिटी इससे डिफरेंट है?

कुछ मतलब नहीं है इसका, इसका कोई मतलब नहीं है। लेकिन मनुष्य के स्वभाव का यह हिस्सा है कि वह अस्वाभाविक हो सकता है। अस्वाभाविक होता है तो दुख पाता है। दुख का मतलब हैः अस्वाभाविक होने का फल। स्वाभाविक होता है, सुख पाता है। सुख का मतलब हैः स्वाभाविक होने का फल। लेकिन स्वाभाविक होने की चेष्टा मत करना, नहीं तो वह भी अस्वभाव ही होगा। अस्वाभाविक होने को समझ लेना, बात खत्म हो जाएगी, धीरे-धीरे स्वभाव आ जाएगा। चीजें जैसी हैं--हैं। यह ख्याल आ जाए तो ध्यान के लिए बड़ी संभावना बन जाती है।

प्रश्नः इस अहं-भाव की निवृत्ति कैसे हो? यानी साक्षित्व लाया नहीं जाता और साक्षी बना नहीं जाता। केवल हम कुछ बने हुए हैं, उसी के कारण साक्षीपन की अनुभूति नहीं हो रही है। तो यह अहं-भाव, जो बने हुए हैं हम, उसकी निवृत्ति कैसे हो?

नहीं-नहीं, उसकी निवृत्ति आप कर ही नहीं सकते हैं। क्योंकि जो कह रहा है कि मैं निवृत्ति कैसे करूं--वही है अहं। उसकी आप निवृत्ति कर ही नहीं सकते। अहंकार इतना सूक्ष्म है कि जब वह यह पूछता है कि अहंकार को कैसे मिटाएं? तो वही पूछ रहा है। सवाल और कहीं से नहीं आ रहा है। क्योंकि अहंकार के पीछे तो सवाल ही नहीं है, वहां अहंकार है ही नहीं। अहं उसका हिस्सा है। साक्षी होने की जो चित्त-दशा है उसका हिस्सा नहीं है।

अब जैसे समझ लीजिए, पानी है, पानी पूछता है कि मैं अपनी तरलता कैसे मिटाऊं? लिक्विडिटी कैसे मिटाऊं?

तो पानी तो तरल होकर ही हो सकता है। तो पानी तो तरलता नहीं मिटा सकता, क्योंकि पानी की परिभाषा में तरलता है। तरलता उसका हिस्सा है। हम उसको कहते हैं कि सौ डिग्री तक गर्म हो जाओ, कि शून्य डिग्री के नीचे ठंडे हो जाओ। तो शून्य डिग्री के नीचे होकर ठंडे हो जाओगे, तुम पानी रह नहीं जाओगे, बर्फ हो जाओगे।

तो वह कहता है कि वह तो ठीक है, मान लिया कि बर्फ हो गए, लेकिन तरलता कैसे मिटेगी? उसकी जो तकलीफ है, वह होकर तो नहीं देख रहा है। वह कह रहा है कि मान लिया कि बर्फ हो गए, लेकिन तरलता कैसे मिटेगी?

हम उससे कहते हैं, सौ डिग्री तक गर्म हो जाओ, तो तुम भाप हो जाओगे।

वह कहता है कि मान लिया कि भाप हो गए, लेकिन तरलता कैसे मिटेगी?

नहीं, तरलता तो पानी की ये सौ डिग्री के बीच का ही खेल है। अहंकार जो है वह कर्ता की डिग्रियों के बीच का खेल है। या तो उससे नीचे गिर जाओ। जैसे बेहोशी में गिर जाता है आदमी। अहंकार चला जाता है। वह फ्रोजेन स्थिति है, बर्फ हो गए आप। नीचे गिर गए। इसीलिए तो शराब का इतना शौक है। अहंकार से छुटकारा है--नीचे गिर कर। बर्फ की स्टेट में ला देता है वह आप को। लेकिन जिंदगी बहुत उष्ण है, ज्यादा देर बर्फ नहीं रह सकते। जिंदगी की उष्णता पिघला कर फिर पानी बना देती है। सुबह होते ही फिर नशा नदारद हो जाता है। फिर होश आता है, फिर पता चलता है कि मैं हूं।

तो एक रास्ता तो है कि बेहोश हो जाएं, तो अहंकार के बाहर हो जाएंगे। लेकिन इसका आपको पता नहीं चलेगा कि बाहर हो गए, क्योंकि बेहोश होकर बाहर हुए हैं। और दूसरा रास्ता यह है कि आप साक्षी में पहुंच जाएं, तो आप पाएंगे कि बाहर चले गए हैं। लेकिन चूंकि साक्षी में गए हैं, तो साक्षी तो होश है, इसलिए आपको यह भी पता चलेगा कि अहंकार नहीं रहा।

तो साक्षी की अवस्था और बेहोशी की अवस्था में बहुत बार भूल हो जाती है।

जैसे अब मेरी समझ है कि रामकृष्ण कभी भी साक्षी की अवस्था में नहीं पहुंचे। वे बेहोशी की अवस्था में ही पहुंचते रहे और वे नीचे ही गिरते रहे। लेकिन वे अवस्थाएं बिल्कुल एक जैसी लगती हैं। क्योंकि पानी दोनों हालत में तरल नहीं रह जाता है। एक गुण तो दोनों में बराबर है बर्फ में और भाप में--कि तरलता खो जाती है।

प्रश्नः यह अहंकार भी रहे तो रहे, यह भी आत्मा का एक रूप है। इसको मारने की कोशिश क्यों करते हैं?

आत्मा की वृत्ति नहीं है यह।

प्रश्नः नहीं, जो भी है, वह आत्मा का ही गुण है, वह रहे तो रहे। उसको मारने की कोशिश ही क्यों करनी?

नहीं-नहीं, कोई सवाल ही नहीं है करने का। मैं वही तो कह रहा हूं। नहीं, कोशिश करने का सवाल तो है ही नहीं। कोशिश करिएगा भी तो नहीं मार सकते हैं।

प्रश्नः आजकल जितनी दुनिया है वह अहंकार को मारने के पीछे पड़ी है।

वह भी अहंकार का हिस्सा है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। अहंकार को बढ़ाने की कोशिश करो कि मारने की कोशिश करो, दोनों हालत में अहंकार रहेगा। उससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। तो मैं कोशिश की बात नहीं कह रहा, मैं तो यह कह रहा हूं कि कर्ता होने की स्थिति से एक छलांग अपने आप घटती है।

प्रश्नः साक्षी बन करके उस अहंकार को देखते रहो।

देखने को बचेगा नहीं वहां। यही तो सारी गड़बड़ है। वह सपोजीशन का मामला है। हम कहते हैं, साक्षी बन कर अहंकार को ... । साक्षी जहां होगा वहां अहंकार कैसे होगा? दोनों बातें साथ नहीं होने वाली। साक्षी हुए कि तुम पाओगे--अहंकार न था, न है, न हो सकता है।

जैसे कि सुबह कोई आदमी कहे, रात सपना देखे और सुबह कहे कि सपने को कैसे तोड़ें? हम उससे कहेंगे, तुम तो नींद तोड़ो, सपने की फिकर छोड़ दो। वह कहे, हां, यह बात ठीक है, जाग कर सपने को देखते रहें। तो क्या मतलब रहेगा? वह जाग कर कैसे सपने को देखता रहेगा? वह जागने के साथ सपना टूट जाएगा। जागते से ही सपना देखने को बचेगा नहीं। वह नींद का हिस्सा है।

सपना मूल नहीं है, नींद मूल है। तो नींद तो बिना सपने की हो सकती है, लेकिन सपना बिना नींद के नहीं हो सकता। इसलिए सपने से मत लड़ो। क्योंकि अगर सपने में तुम सपने से भी लड़े, तो तुम सिर्फ नये सपने पैदा कर सकते हो, और कुछ भी नहीं कर सकते। जाग जाओ, सपने की फिकर ही छोड़ो। वह नींद का हिस्सा है, तुम जाग गए तो वह नींद के साथ गया। वह बचेगा नहीं कहीं।

हमारे कर्ता होने की जो नींद है, अहंकार उसका सपना है। अहंकार से लड़े तो नींद में ही चलेगी लड़ाई, कहीं पहुंचने वाले नहीं। दो तरह के नींद के सपने हो सकते हैं। कि एक आदमी कहे कि अब मैं बिल्कुल निर-अहंकारी हो गया। मगर "मैं" ही हो गया निर-अहंकारी। होगा कौन निर-अहंकारी? एक आदमी कहे कि मैं तो बड़े अहंकार से भरा हुआ हूं। एक कहे कि मुझमें तो अहंकार बचा ही नहीं। लेकिन दोनों में "मैं" बचे हुए हैं। वे दो तरह की घोषणाएं कर रहे हैं। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। मैं मौजूद है और घोषणा कर रहा है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

नहीं; एक आदमी जाग गया। तुम उससे पूछो कि अहंकार मिट गया तुम्हारा? वह कहेगा, था ही नहीं। क्योंकि होता तो मिटाना मुश्किल था। मिटता कैसे? जो है वह कभी मिटता नहीं है। वह कहेगा, था ही नहीं। तो हम कहेंगे, अहंकार से छुटकारा हो गया तुम्हारा? वह कहेगा, हम कभी फंसे न थे, बंधे न थे। तब हमें उसकी भाषा समझ में नहीं आती। हम कहते हैं कि बड़ी मुश्किल की बात है। हम तो उसी से फंसे हैं। तो हमें कोई तरकीब बता दो कि तुम कैसे निकल गए बाहर?

वह कभी बाहर निकला नहीं; उसने जाग कर देखा और उसने पाया कि नींद में सपना देखा था कि बंधे हैं।

तो इसलिए मेरा सारा जोर इस बात पर है कि जिंदगी जैसी है उसको चुपचाप स्वीकार कर लो। जो है उसे पूरी तरह स्वीकार कर लो। जिस दिन स्वीकृति पूरी हो जाएगी, इंच मात्र भी अस्वीकृति तुम्हारे भीतर न होगी, उसी दिन तुम पाओगे घटना घट गई। उसके बाद एक क्षण रुकने की जरूरत नहीं है घटना को। बस उस क्षण तक घटना नहीं घट पाएगी। वह घट जाएगी। और उसके पार नहीं है; उसके पार यह भी पता है कि पहले भी नहीं था।

इसलिए जो कोई कहता है कि अहंकार छोड़ो! गलत बातें कह रहा है, गलत बातें कह रहा है। अहंकार छोड़ा नहीं जा सकता। क्योंकि छोड़ना-पकड़ना सब अहंकार की तृप्ति है। जो हमारी सारी तकलीफ है वह ऐसी है जैसे कि कुत्ता पूंछ को पकड़ रहा है अपनी। पास दिखाई पड़ती है बिल्कुल, मुंह के पास रखी है बिल्कुल, उचकता है। जब वह उचकता है तो पूंछ भी उचक जाती है। फिर उतना ही फासला रह जाता है। फिर वह देखता है कि पास तो बिल्कुल है, जरा छलांग ठीक से लगानी चाहिए। अभी ठीक से पकड़ नहीं पाया, क्योंकि मैं जरा चूक गया। अब ऐसी ताकत से उछलो कि पूंछ मिल जाए वहां जहां है। वह जितनी ताकत से उछलता है उतनी ताकत से पूंछ उछल जाती है, क्योंकि वह पूंछ कुत्ते का हिस्सा है। तो वह सोचता है, इस तरफ से पकड़ में नहीं आती, इस तरफ से पकड़ो। मुंह फिराओ, उलटी तरफ से पकड़ लो। उधर से भी छलांग लगाता है, वह पाता है कि यह पूंछ हमेशा उचक जाती

है। उसको यह पता नहीं चल पाता, पता चले भी कैसे, कि पूंछ उसकी छलांग में जुड़ी हुई है।

इसलिए वह धन इकट्ठा करता है तो अहंकार मजबूत हो जाता है। तो वह सोचता हैः धन छोड़ दो। वह धन छोड़ देता है तो अहंकार मजबूत हो जाता है। वह पूंछ है उसकी जुड़ी हुई। वह कहता है, गृहस्थी में अहंकार से छुटकारा नहीं होगा, संन्यासी हो जाओ। तो संन्यासी का अहंकार पकड़ लेता है। अंतर कुछ पड़ता नहीं। अंतर पड़ नहीं सकता।

कुत्ते को किसी दिन समझना पड़ेगा कि पूंछ अपनी है, पकड़ने की जरूरत नहीं, अपने पीछे ही लटकी हुई है। इसको छोड़ो, इसकी झंझट में ही पड़ने की जरूरत नहीं। यह पूंछ अपनी ही है, इसको पकड़ना क्या है! यह पकड़ी ही हुई है। बस कुत्ता मुक्त हो गया। अब वह पूंछ को पकड़ता नहीं। अब वह शान से चला जा रहा है।

जो सारी कठिनाई है हमारी, वह कठिनाई बहुत ही विसियस है। क्योंकि हम जो करते हैं उससे वह कठिनाई और बढ़ती हुई मालूम पड़ती है, घटती नहीं। कुत्ता पागल हो सकता है, इतनी जोर-जोर से छलांग लगाने लगे पकड़ने को पूंछ कि पगला जाए, दिमाग खराब हो जाए उसका। और उसको पूंछ इतने करीब लगती है कि वह सोचता हैः इस बार चूक गए, अगली बार पकड़ लेंगे। दूर तो दिखती नहीं, इतनी पास है। इससे भी दूर की चीजें पकड़ ली हैं उसने सदा। तो यह तो पूंछ है। उतनी दूर मिठाई पड़ी थी, उसने छलांग लगाई और पकड़ ली। उतने दूर आदमी जा रहा था, दौड़ा और पकड़ लिया। दूर-दूर की चीजें पकड़ लीं। तो कुत्ते के मन को बड़ा दुख होता है कि यह जो पूंछ है, इतने पास रखी है, यह चूकी जा रही है, तो मन में बड़ा क्रोध भरता है। क्रोध से जोर से छलांग बढ़ती है।

संन्यासी और गृहस्थ जो हैं, करवट बदले हुए पूंछ पकड़ रहे हैं। और कुछ फर्क नहीं है। एक इधर से पकड़ रहा है, एक उधर से पकड़ रहा है। पूंछ को पकड़ो ही मत।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वे तो यह कहेंगे ही। वे यह कहेंगे ही। हरिद्वार गईं, यह आपकी गलती। उनको महात्मा समझा, यह आपकी भूल। उसमें वे क्या करें। वे क्या करें। आपके लौटने का इंतजाम करते हैं कि लौटो। टिकट खरीदो और वापस जाओ। अगर हरिद्वार न जाओ, तो कुछ दिन में महात्मा बंबई आएगा इधर आपके पास कि माई, कुछ जानना हो तो हम बताने आए हैं। उससे कहना कि बाबा, कुछ नहीं जानना, जा। तो वह हरिद्वार चला जाएगा।

प्रश्नः अहंकार से मुक्त होना ही परमात्मा का मिलन है या परमात्मा के मिलन से अहंकार से मुक्त होते हैं?

बिल्कुल, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं।

प्रश्नः जैसे परमात्मा की अनुभूति हो जाने पर स्वतः का ही आनंद लिया जा सकता है या दूसरे भी...

दूसरा कुछ स्वतः बचता नहीं। वही तो झंझट है। वही तो हम सपोजीशन की वजह से हम परेशान हैं। परमात्मा की अनुभूति होने पर दूसरा बचता नहीं है। स्व भी नहीं बचता।

प्रश्नः लेकिन अपनी जो जरूरतें हैं, खाना-पीना और फैसेलिटीज, हम अपने लिए कमाते हैं। ऐसे हम दूसरे के लिए भी परमात्मा की अनुभूति...

यह सारी कठिनाई जो है हमारी, यह हम पहले से पूछ रहे हैं। ये सारे जो सवाल हैं, ये ऐसे सवाल हैं कि हम पहले से पूछ रहे हैं।

यह ऐसा मामला है कि एक आदमी बैलगाड़ी में बैठा है। उसको हमने कहा कि हवाई जहाज भी होता है। उस आदमी ने कहा, बैल कितने लगते हैं हवाई जहाज में?

हमने कहा, बैलगाड़ी से बहुत तेज चलता है। उसने कहा, तो बैल तो हजार, दो हजार बांधने पड़ते होंगे। हमने कहा, भई, बैल लगते ही नहीं। उसने कहा, क्या बातें कर रहे हो? अगर चलता है तो बिना बैल के चलेगा कैसे? बिना बैल के चलेगा कैसे? हांकने वाला रहता है? हमने कहा, हांकने वाला नहीं रहता, क्योंकि बैल ही नहीं रहते। तो वह कहे, बिना हांकने वाले के कहीं चल सकता है!

मेरा मतलब समझ रहे हैं न। वह जो आदमी... दूसरा, कि रास्ता--कितना बड़ा रास्ता बनाना पड़ता है? हवाई जहाज को चलने के लिए कितना बड़ा रास्ता बनाना पड़ता है? हम कहें कि रास्ता बनाना नहीं पड़ता। उसकी जो कठिनाई है वह कठिनाई बैलगाड़ी में बैठ कर हवाई जहाज के संबंध में प्रश्न पूछने की कठिनाई है। जो बिल्कुल स्वाभाविक है।

हमारी सब की कठिनाई यही है। तो मैं यह कहता हूं कि इसकी... ये प्रश्न अर्थ नहीं रखते। क्योंकि हम जो भी करेंगे वे प्रश्न गड़बड़ होंगे। गड़बड़ होने वाले हैं वे। क्योंकि हमें उस जगह का कोई पता नहीं है, कोई पता नहीं है कि वहां क्या होगा। उस संबंध में बिल्कुल ही अज्ञात जाना पड़ेगा तुम्हें। उत्तर पहले मिल भी नहीं सकते हैं।

और इसलिए सब उत्तर नकार के होंगे, निगेटिव होंगे। यानी हम इतना ही कह सकते हैं कि नहीं, बैल नहीं होते, बैलगाड़ी वाले से। इतना तू पक्का मान। एक बात पक्की है कि बैल नहीं होते। और यही उसकी तकलीफ है। क्योंकि बैल अगर हों तो वह समझ भी ले कि हवाई जहाज, ठीक है, बड़ी बैलगाड़ी होगी। यही उसकी तकलीफ है। हम उससे कहते हैं, बैल नहीं होते। वह कहता है, आप निषेधात्मक बताते हैं। आप हमको पाजिटिवली बताओ। बैल नहीं होते, घोड़ा होता है? क्या होता है, यह बताओ! पाजिटिवली बताओ। और बैलगाड़ी के पास जो भाषा है, बैलगाड़ी वाले के पास जो भाषा है, उससे कुछ भी संबंध नहीं रह गया है।

जब हम पूछते हैं कि जब परमात्मा मिल जाएगा, तो फिर हम दूसरे के लिए कुछ करेंगे?

तब दूसरा बचेगा नहीं। आप बचेंगे नहीं। करना बचेगा नहीं। होना बचेगा। और होना होता रहेगा। दूसरे के लिए भी, अपने लिए भी, सबके लिए भी--होना होता रहेगा। उसको कुछ करने जाना नहीं पड़ेगा।

अभी आपको करने जाना पड़ता है। अभी रास्ते पर एक आदमी गिर पड़ता है, तो आपको सोचना पड़ता है कि उठाएं कि न उठाएं। इसका डिसीजन लेना पड़ता है कि इसको उठाएं कि न उठाएं। तो जरा उसकी टोपी उठा कर देखनी पड़ती है कि चोटी है कि नहीं। क्योंकि अगर मुसलमान हो तो नाहक उठाने का पाप लग जाए। हिंदू हो तो पुण्य मिल जाए। टोपी उठा कर देखनी पड़ती है।

यह जो, यह जो अभी हो रहा है न, ये अब आदमी यह पूछेगा कि समझ लो परमात्मा मिल गया, फिर हम इसकी टोपी उठा कर देखेंगे कि नहीं कि चोटी है कि नहीं?

चोटी होगी तो भी परमात्मा है, चोटी नहीं होगी तो भी परमात्मा है। चोटी वाला परमात्मा या गैर-चोटी वाला परमात्मा, उठाने के लिए इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। फिर यह भी सवाल नहीं होगा कि उठाएं कि नहीं। क्योंकि उठाएं कि नहीं, यह सवाल तब उठता है जब मुझे कर्ता होना है। नहीं, हम आदमी को गिरते देखेंगे और फिर अपने को उठाते देखेंगे। इससे भिन्न कुछ बात नहीं रह जाती है। एक आदमी गिरा, यह दिखाई पड़ेगा। और हमने उसको उठाया, यह भी दिखाई पड़ेगा। और इन दोनों में कहीं कर्ता का सवाल नहीं उठता कि मैं उठाऊं कि न उठाऊं, कि यह करूं कि न करूं, यह सवाल नहीं उठता है।

प्रश्नः तो स्वतः की अनुभूति से कैसे यह बोध होगा?

उसके अतिरिक्त कोई रास्ता ही नहीं है। दूसरे से पूछ रहे हो इसलिए ख्याल नहीं आ रहा है। दूसरे से पूछ रहे हो, इसलिए ख्याल नहीं आ रहा है। नहीं पूछो तो अभी तुमको भी ख्याल आ जाए।

प्रश्नः वैसे तो बहुत परेशान थे, लेकिन ध्यान का कुछ मतलब नहीं मालूम था कि ध्यान क्या है, कैसे करें, क्या करें। जब तक किसी से सुनें नहीं या पढ़ें नहीं...

तो पढ़ते रहो, सुनते रहो। जब उनसे भी परेशान हो जाओगे तब कहां जाओगे? फिर खुद ही पर लौट आना पड़ेगा।

प्रश्नः नहीं, जैसे ध्यान, मैंने सुना है कभी-कभी कि ध्यान भी होता है, तो अपने आप कैसे मालूम पड़ेगा वह?

अपने आप ही मालूम पड़ेगा। और नहीं मालूम पड़ेगा तो नहीं मालूम पड़ेगा। लेकिन दूसरे से तो कभी मालूम नहीं पड़ेगा। मेरा मतलब समझ रहे हो न! दूसरे से कभी नहीं मालूम पड़ेगा। पूछो! वह भी हिस्सा है भटकने का। भटकना जरूरी है अपने घर पर लौट आने के लिए। और जितना जो भटक ले उतना अच्छा है। क्योंकि जितना थका-मांदा लौटेगा उतना घर में विश्राम करेगा आकर। भटकना भी जरूरी है, एकदम जरूरी है। भटकना हिस्सा है जिंदगी का, उसमें भटकने में कुछ बुरा भी नहीं है। पूछो, भटको। जब भटक जाओगे और किसी से न मिलेगा तब क्या करोगे? फिर लौट ही आना पड़ेगा न अपने पर--थ्रोन बैक!

प्रश्नः वैसे तो हजारों वर्ष से लोग ऐसे ही भटक रहे हैं।

अरे हजारों वर्ष से कहां भटक रहे हो तुम! एक वर्ष भी भटक लो तो बहुत है। भटकते भी नहीं हो, ऐसे ही अपनी जगह पर खड़े होकर नाचते रहते हो, उचकते रहते हो वहीं। भटक भी लो तो कुछ हो जाए।

अब हजारों वर्ष से भटक रहा है! कौन भटक रहा है? तुम भटक रहे हो हजारों वर्ष से? एक दिन भी भटक लो चौबीस घंटे पूरी तरह से, पहुंच जाओगे घर। लेकिन भटकते भी नहीं हो, उसमें भी ताकत नहीं लगाते हो। खड़े हैं, उछलकूद कर रहे हैं वहीं। सोच रहे हैंः भटक रहे हैं, बड़ा खोज कर रहे हैं। कुछ खोज-वोज नहीं कर रहे हैं। कोई अपनी गीता पर उछल रहा है, कोई अपनी कुरान पर उछल रहा है, कोई बाइबिल पर खड़ा हुआ उछल रहा है। गीता, कुरान, बाइबिल मरे जा रहे हैं उछलकूद की वजह से। तुम कहीं जा नहीं रहे, अपनी किताब पर खड़े नाच रहे हो।

चीजें तो दिखाई पड़ेंगी न। भटकने से ही दिखाई पड़ेंगी। भटको, उसमें हर्ज नहीं है। पूछो, उसमें हर्ज नहीं है। लेकिन सब पूछना व्यर्थ सिद्ध होगा। आखिर में तुम पाओगे कि कहां के पागलपन में पड़े हैं! क्या पूछ रहे हैं? किससे पूछना है? कौन बताएगा? कोई बता भी देगा तो मैं कैसे जान लूंगा? यह पता चलेगा, एक रिवीलेशन होगा, तुम्हारे भीतर से होगा यह तो। तुम्हें लगेगा कि कोई नहीं बताएगा, कोई बताने वाला नहीं है। कोई जानता होगा तो भी नहीं बता सकता है, यह कोई बताने की बात नहीं है। तब क्या करोगे? जब कुछ करने को न बचेगा तब तुम ध्यान कर सकोगे, नहीं तो नहीं कर सकोगे। जब तक तुम्हें कुछ भी करने को बच गया है, तब तक तो तुम वही करोगे, ध्यान नहीं करोगे। ध्यान जो है, वह लास्ट...।

प्रश्नः इस हिसाब से, आपकी जो थ्योरी है इसके हिसाब से तो यह हुआ कि व्यापार है, लोगों के कर्ज हैं... और अगर यही विचारधारा रही...

यही तो तकलीफ है। वही मैं पूरे वक्त कह रहा हूं कि तुम वही मान कर चल रहे हो कि आदमी बाजार गया और उसने केले खरीदे। नहीं, उसने खरीदे भी नहीं, वह गया भी नहीं। वह तुम मान कर चलते हो न कि अगर आपकी बात मान लेंगे तो ऐसा हो जाएगा। ऐसा करके देखो न!

प्रश्नः नहीं, उनके जो विचार हैं आजकल, कारण ये हैं कि धर्म अलग है मंदिर में और व्यापार अलग है बाजार में। वह फिर सारी बिजनेस जो है--व्यापार लाइन...

इसके हिसाब से तो गफलियत खाई न। या तो यह है कि फिर वह स्टेज जैसे कि ध्यान के अंदर विचार अपने आप जब आते हैं, आपने जैसी थ्योरी बताई उसी हिसाब से फिर सारा जीवन ही उसी में है।

है , सच्चाई तो यही है कि पूरा जीवन ही ऐसा होना है।

(प्रश्न का ध्वनि -मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह तो समझ में बात आ गई तो करने की थोड़े ही रही , वह चौबीस घंटे की हो गई। चौबीस घंटे की हो गई।

(प्रश्न का ध्वनि -मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

वह हो ही गई , समझ में आ गई तो बात हो गई।

पांचवां प्रवचन

धर्म, सम्राट बनने की कला है

मेरे प्रिय आत्मन्!

मनुष्य के जीवन में इतना दुख है, इतनी पीड़ा, इतना तनाव कि ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद पशु भी हमसे ज्यादा आनंद में होंगे, ज्यादा शांति में होंगे। समुद्र और पृथ्वी भी शायद हमसे ज्यादा प्रफुल्लित हैं। रद्दी से रद्दी जमीन में भी फूल खिलते हैं। गंदे से गंदे सागर में भी लहरें आती हैं--खुशी की, आनंद की। लेकिन मनुष्य के जीवन में न फूल खिलते हैं, न आनंद की कोई लहरें आती हैं।

मनुष्य के जीवन को क्या हो गया है? यह मनुष्य की इतनी अशांति और दुख की दशा क्यों है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मनुष्य जो होने को पैदा हुआ है वही नहीं हो पाता है, जो पाने को पैदा हुआ है वही नहीं उपलब्ध कर पाता है, इसीलिए मनुष्य इतना दुखी है?

अगर कोई बीज वृक्ष न बन पाए तो दुखी होगा। अगर कोई सरिता सागर से न मिल पाए तो दुखी होगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मनुष्य जो वृक्ष बनने को है वह नहीं बन पाता है और जिस सागर से मिलने के लिए मनुष्य की आत्मा बेचैन है, उस सागर से भी नहीं मिल पाती है, इसीलिए मनुष्य दुख में हो?

धर्म मनुष्य को उस वृक्ष बनाने की कला का नाम है।

धर्म मनुष्य को सागर से मिलाने की कला का नाम है--जिस सागर से मिल कर तृप्ति मिलती है, शांति मिलती है, आनंद मिलता है।

लेकिन धर्म के नाम पर जो जाल खड़ा हुआ है वह मनुष्य को कहीं ले जाता नहीं, और भटका देता है। धर्म के नाम पर कितने धर्म हैं दुनिया में? तीन सौ धर्म हैं दुनिया में! और धर्म तीन सौ कैसे हो सकते हैं? धर्म हो सकता है तो एक ही हो सकता है। सत्य अनेक कैसे हो सकते हैं? सत्य होगा तो एक ही होगा। लेकिन एक सत्य के नाम पर जब तीन सौ संप्रदाय खड़े हो जाते हैं, तो सत्य की खोज करनी भी मुश्किल हो जाती है। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं--और धार्मिक आदमी कहीं भी नहीं है। धार्मिक आदमी नहीं है इसलिए इतनी बेचैनी है, इतनी अशांति है, इतना दुख है।

धार्मिक आदमी न होने के दो कारण हैं।

एक छोटी सी कहानी से समझाऊं।

पहला तो कारण यह है कि मनुष्य उन चीजों को बचाने में जीवन गंवा देता है, जिनके बचाने का अंततः कोई भी मूल्य नहीं। मनुष्य उस दौड़ में सारे जीवन को लगा देता है, जिस दौड़ में दौड़ने के बाद भी कहीं पहुंचने की कोई उम्मीद नहीं।

स्वामी राम जापान गए हुए थे। टोकियो के एक बड़े रास्ते पर हजारों लोगों की भीड़ थी। राम भी उस भीड़ में खड़े हो गए। एक मकान में आग लग गई थी। कोई बहुमूल्य मकान जल रहा था। बड़ा महल, चारों तरफ से लपटें पकड़ गई थीं। सैकड़ों लोग महल के भीतर से सामान बाहर ला रहे थे। महल का मालिक खड़ा था--खोया, बेहोश सा। लोग उसे सम्हाले थे। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है। जीवन भर उसने जो कमाया था उसमें आग लग गई थी।

फिर लोग बाहर आए तिजोरियां लेकर, बहुमूल्य सामान लेकर, किताबें लेकर, कीमती दस्तावेज लेकर और उन लोगों ने कहा कि अब एक बार और भवन के भीतर जाया जा सकता है, फिर तो लपटें पूरी तरह पकड़ लेंगी, फिर भीतर जाना असंभव होगा। हमें जो भी महत्वपूर्ण मालूम पड़ा, हमने बचा लिया है। अब भी कोई और चीज खास रह गई हो तो आप हमें बता दें, हम उसे बचा लाएं।

उस मालिक ने कहा, मुझे कुछ भी न दिखाई पड़ रहा है, न समझ आ रहा है। तुम एक बार और जाकर भीतर देख लो, जो भी बचाने जैसा लगे बचा लो।

वे लोग भीतर गए। हर बार सामान लेकर वे खुशी-खुशी बाहर लौटे थे कि इतनी चीजें बचा लीं। लेकिन अंतिम बार वे छाती पीटते हुए और रोते हुए लौटे। सारी भीड़ पूछने लगी कि क्यों रो रहे हो? क्या हो गया?

उन लोगों ने रोते हुए कहा कि बड़ी भूल हो गई, भवन के मालिक का एक ही बेटा था, वह भीतर सोया था, हम उसे बचाना ही भूल गए। हमने सारा सामान बचा लिया, लेकिन सामान का असली मालिक मर गया है, हम उसकी लाश लेकर आए हैं।

स्वामी राम ने अपनी डायरी में उस दिन लिखा कि आज जो मैंने देखा है वह अधिकतम मनुष्यों के जीवन में घटित होता है। लोग व्यर्थ की चीजें बचाने में जीवन गंवा देते हैं और जीवन का असली मालिक मर ही जाता है, उसे बचा ही नहीं पाते।

अधिक लोग इसलिए जीवन को व्यर्थ कर लेते हैं कि उन्हें पता ही नहीं कि जीवन में क्या बचाने योग्य है, क्या छोड़ देने योग्य है। हम सब वस्तुएं और सामान बचाने में लग जाते हैं और खुद का व्यक्तित्व, खुद की आत्मा खो देते हैं।

एक तो कारण यह है कि मनुष्य धार्मिक नहीं हो पाता। और जो मनुष्य धार्मिक नहीं हो पाता है वह मनुष्य कभी आनंदित भी नहीं हो सकता है। धार्मिक होना और आनंदित होना, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। अधार्मिक होना और दुखी होना, एक ही बात को कहने के दो ढंग हैं। इसलिए कोई कभी कल्पना न करे कि अधार्मिक होते हुए भी कोई व्यक्ति कभी आनंदित हो सकता है। यह असंभव है।

जैसे शरीर की बीमारियां हैं, और शरीर से बीमार आदमी कैसे आनंदित हो सकता है? शरीर तो स्वस्थ चाहिए। वैसे ही आत्मा की बीमारियां भी हैं। अधर्म आत्मा की बीमारी का नाम है। जो आत्मा की बीमारी में पड़ा हुआ है वह कैसे आनंदित हो सकता है? शरीर दुखी हो तो भी एक आदमी भीतर आनंदित हो सकता है। लेकिन भीतर की आत्मा ही दुखी हो तब तो आनंदित होने की कोई उम्मीद नहीं है, कोई आशा नहीं है।

लेकिन जिस आत्मा को आनंदित करना है उस आत्मा के लिए हम कुछ भी नहीं करते, शरीर के लिए सब कुछ करते हैं। व्यर्थ की चीजों के लिए बहुत कुछ करते हैं। जैसे छोटे बच्चे समुद्र के किनारे पत्थर बीन कर इकट्ठा कर लेते हैं और सोचते हैं कि कोई बहुत बड़ा काम कर लिया। जैसे कि छोटे बच्चे समुद्र के किनारे बैठ कर रेत के मकान बना लेते हैं और लड़ते हैं, झगड़ते हैं--कि मेरा मकान तोड़ दिया! मेरे मकान पर लात मार दी! लेकिन उन्हें पता नहीं कि थोड़ी देर में मां की आवाज आएगी घर से और वह सब मकान वहीं किनारे पर, रेत के किनारे पर छोड़ कर चले जाना पड़ेगा; न कोई मकान किसी का है, न किसी के मिटने से कुछ मिटता है, न बनने से कुछ बनता है।

ऐसे ही हम जिंदगी में जो मकान बनाते हैं--मिट्टी के, बाहर के, वस्तुओं के, पदार्थ के--एक दिन पुकार आती है ऊपर से और रेत के किनारे पर सब छोड़ कर चले जाना पड़ता है। फिर उनका कोई हिसाब नहीं रखा जा सकता। फिर उन्हें साथ भी नहीं ले जाया जा सकता। जाते वक्त, जमीन से विदा होते वक्त हाथ खाली होते हैं। लेकिन जिन चीजों से भरने में हमने जीवन गंवा दिया, उनमें से एक भी हमारे साथ नहीं होती।

और ध्यान रहे, वही है संपत्ति जो मृत्यु के क्षण में भी साथ रहे। वह संपत्ति नहीं है जो मृत्यु के क्षण में छूट जाए।

सिकंदर मरा, तो जिस राजधानी में उसकी अरथी निकली, हजारों-लाखों लोग उस अरथी को देखने इकट्ठे हुए थे। लेकिन हर आदमी एक ही सवाल पूछने लगा। सिकंदर के दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके हुए थे। ऐसा तो कभी भी नहीं हुआ था। किसी के हाथ अरथी के बाहर लटके नहीं देखे गए थे। लोग पूछने लगे, कोई भूल हो गई है? लेकिन किसी भिखमंगे की अरथी होती तो भूल भी हो सकती थी। सिकंदर की अरथी थी। बड़े-बड़े सम्राट कंधा दे रहे थे। ये हाथ क्यों लटके हुए हैं बाहर? फिर धीरे-धीरे लोगों को पता चला, सिकंदर ने खुद ही चाहा था कि मेरे हाथ बाहर लटके रहने देना। मित्रों ने पूछा था कि यह क्या पागलपन है? हाथ बाहर कभी किसी के लटके देखे नहीं गए। किसलिए चाहते हो कि हाथ बाहर लटके रहें? तो सिकंदर ने कहा था, मैं चाहता हूं कि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं, मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं हैं।

जिंदगी भर दौड़ कर हाथ भरते हैं और फिर पाते हैं कि हाथ खाली रह गए हैं। जिंदगी भर ये हाथ खाली थे। सारी दौड़ व्यर्थ हो जाती है। कुछ मिलता नहीं, सिर्फ मिलता हुआ मालूम पड़ता है। करीब-करीब ऐसे ही जैसे दूर दिखाई पड़ता है

कि पृथ्वी जमीन को छू रही है, हम थोड़े आगे बढ़ेंगे तो वह जगह आ जाएगी जहां जमीन आकाश को छूता है। लेकिन हम जितने आगे बढ़ते हैं उतना ही वह घेरा भी आगे बढ़ता चला जाता है। हम जिंदगी भर चलते रहें, पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा लें, वह जगह नहीं आएगी जहां जमीन आकाश को छूती है। वह सिर्फ छूती हुई दिखाई पड़ती है, वह कहीं छूती नहीं।

ठीक ऐसे ही आदमी जिंदगी भर सोचता हैः यह मिल जाए, यह मिल जाए, यह मिल जाए। और सब मिल जाएगा एक दिन, ऐसा लगता है आगे, आगे कहीं मिलने की जगह आ जाएगी। दौड़ता है, दौड़ता है, दौड़ता है। आखिर गिर जाता है, मिलने का वक्त नहीं आता, हाथ खाली ही रह जाते हैं।

एक तो इसलिए आदमी धार्मिक नहीं हो पाता कि वह बाहर की चीजों को इकट्ठा करने में सारी शक्ति, सारा समय, सारा जीवन गंवा देता है।

और इससे भी ज्यादा खतरनाक बात दूसरी है। यह बाहर की दौड़ का आदमी तो कभी न कभी जाग सकता है और इसे ख्याल आ सकता है कि मैं क्या कर रहा हूं? ये मैं कौन से सपने बसा रहा हूं? ये मैं कैसी व्यर्थ की आशाओं में जीवन गंवा रहा हूं? ये मैं कैसे रेत के मकान बना रहा हूं जो कल गिर जाएंगे? यह मैं कैसी कागज की नाव बहा रहा हूं जो अभी-अभी डूब जाएगी? एक न एक दिन बाहर की जिंदगी में दौड़ने वाला आदमी खड़ा हो जाता है, सोचता है, विचारता है। लेकिन एक और खतरा है। जो लोग बाहर की जिंदगी से ऊब जाते हैं और जिन्हें यह भी समझ में आ जाता है कि व्यर्थ है बाहर की दौड़, वे फिर भीतर की खोज में निकलते हैं। और भीतर की खोज में दो दिशाएं हैं।

बाहर की खोज अधर्म है। भीतर की खोज में दो दिशाएं हैंः एक धर्म की दिशा है, एक झूठे धर्म की दिशा है। और भीतर जो झूठे धर्म की दिशा पर चला जाता है वह फिर फिजूल हो जाता है, फिर वह भी कहीं नहीं पहुंचता।

बाहर से जाग जाना बहुत आसान है, लेकिन झूठी, भीतर की झूठी धार्मिक दिशा से जागना बहुत कठिन है। जब आदमी बाहर से थक जाता है और समझ लेता है कि कुछ भी पाने योग्य नहीं है... और कौन नहीं समझ लेता है! जिसके पास थोड़ी भी बुद्धि है उसे दिखाई पड़ने लगता है कि कोई प्रयोजन नहीं है बाहर। कुछ भी पा लिया तो अर्थ नहीं है, क्योंकि मृत्यु सब छीन लेती है। तब आदमी भीतर मुड़ता है। लेकिन भीतर एक झूठी दिशा है, एक झूठे धर्म की दिशा है। और उस झूठे धर्म की दिशा में फिर आदमी भटक जाता है और व्यर्थ हो जाता है। फिर आनंद को उपलब्ध नहीं हो पाता।

वह झूठे धर्म की दिशा क्या है?

धर्म के नाम पर कुछ ऐसी बातें धर्म बना दी गई हैं जो धर्म नहीं हैं। जैसे एक आदमी रोज सुबह उठता है और मंदिर हो आता है और सोचता है कि मंदिर हो आने से धर्म हो गया। ऐसा आदमी भ्रांति में है। मंदिर में हो आने से कभी भी धर्म नहीं हुआ है। और कोई भी आदमी का बनाया हुआ मंदिर भगवान का मंदिर नहीं है। आदमी कैसे भगवान का मंदिर बना सकता है? आदमी भगवान का मंदिर बना लेगा तो आदमी भगवान से भी बड़ा हो जाएगा। भगवान आदमी को बनाता होगा, आदमी भगवान को नहीं बना सकता।

लेकिन झूठे धर्म ने यह तरकीब समझाई है कि आदमी भगवान को बना सकता है। एक पत्थर की मूर्ति आदमी बना लेता है और कहता है, भगवान हो गया। और फिर उसकी पूजा शुरू कर देता है। पागलपन की हद्द है! अपने ही हाथ से बनाई गई मूर्तियां भगवान की कैसे हो सकती हैं?

भगवान की कोई मूर्ति नहीं है और भगवान का कोई मंदिर नहीं है। और या फिर सभी मूर्तियां भगवान की हैं और सब कुछ भगवान का मंदिर है। यह सारी पृथ्वी, यह सारा आकाश, ये सारे चांद-तारे भगवान की मूर्ति हैं। यह समुद्र, ये हवाएं, ये लोग, ये आंखें, ये धड़कते हुए दिल, यह रेत, ये सब भगवान की मूर्ति हैं। या तो यह सच है और या फिर यह सच है कि भगवान की कोई भी मूर्ति नहीं। अमूर्ति है, भगवान अरूप है।

लेकिन इन दोनों के बीच में एक तीसरी तरकीब निकाली गई--कि हमने मंदिर बना लिए हैं, मूर्तियां पत्थर की बना ली हैं, मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गिरजे हैं। और न मालूम कितने प्रकार के रूप हैं आदमी के बनाए हुए मंदिरों के, आदमी के बनाए हुए भगवानों के। और इन भगवानों और मंदिरों में हम भटक जाते हैं और खो जाते हैं।

आदमी न मंदिर बना सकता है, न भगवान बना सकता है। आदमी मंदिर में प्रवेश कर सकता है, आदमी भगवान में प्रवेश कर सकता है, लेकिन बना नहीं सकता। आदमी का बनाया हुआ कुछ भी धर्म नहीं हो सकता। धर्म वह है जो हमसे पहले है और हमसे बाद रहेगा। धर्म वह है जिससे हम बनते हैं और जिसमें हम लीन होते हैं। हम धर्म को नहीं बना सकते।

लेकिन हमने धर्म खड़े कर लिए हैं--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध। ये हमारे बनाए हुए धर्म हैं। जो हम बनाते हैं वह नकली होगा, वह कभी असली धर्म नहीं हो सकता। इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना जरूरी है। जो भी आदमी बनाएगा धर्म, वह नकली होगा, वह झूठा होगा। वह असली नहीं हो सकता। असली धर्म वह है जो हमें धारण किए हुए है। असली धर्म वह नहीं है जो हम बनाते हैं। इसलिए धर्मशास्त्र जैसा कोई शास्त्र दुनिया में नहीं है। शास्त्र हैं, धर्मशास्त्र कोई भी नहीं है। धर्मशास्त्र कैसे हो सकता है! आदमी की बनाई हुई किताब धर्म की किताब कैसे हो सकती है!

हां, एक किताब है जो चारों तरफ खुली हुई है। सूरज उस किताब के पन्नों में है, आकाश उस किताब के पन्नों में है, हवाएं उस किताब के पन्नों में हैं, यह सारी की सारी प्रकृति और यह सारा जीवन उस किताब के अध्याय हैं।

लेकिन उस किताब को कोई खोलने नहीं जाता। लोग रामायण को खोल लेते हैं, कुरान को खोल लेते हैं, बाइबिल को खोल लेते हैं और सोचते हैंः धर्मशास्त्र पढ़ रहे हैं।

धर्मशास्त्र एक ही है--यह पूरा जीवन। परमात्मा का जो बनाया हुआ है वह धर्मशास्त्र है। आदमी की बनाई हुई किताबें धोखा हैं। आदमी की बनाई हुई किताब सुंदर हो सकती है, काव्य हो सकती है, अदभुत हो सकती है, लेकिन धर्मशास्त्र नहीं हो सकती।

रवींद्रनाथ ने अपने जीवन में एक घटना का उल्लेख किया है। रवींद्रनाथ ने लिखा हैः पूर्णिमा की रात थी और मैं झील पर नाव में विहार करता था। छोटा सा बजरा था नाव का, उस बजरे के भीतर एक छोटा सा दीया जला कर मैं किताब पढ़ता था, सौंदर्य शास्त्र पर कोई किताब पढ़ता था। पढ़ता था उस किताब में कि सौंदर्य क्या है?

बाहर पूर्णिमा का चांद था, उसकी चारों तरफ चांदनी बरसती थी, झील की लहर-लहर चांदी हो गई थी। लेकिन रवींद्रनाथ अपने झोपड़े में, झील के बजरे में बंद, नाव के अंदर, एक छोटा सा दीया जला कर, उसके गंदे धुएं में बैठ कर सौंदर्य शास्त्र की किताब पढ़ रहे थे। आधी रात गए थक गईं आंखें, किताब बंद की, फूंक मार कर दीया बुझाया, लेटने को हुए--तो हैरान हो गए, चकित हो गए, उठ कर नाचने लगे! जैसे ही दीया बुझाया, द्वार से, खिड़की से, रंध्र-रंध्र से बजरे की, चांदनी भीतर घुस आई, नाचने लगी चांदनी चारों तरफ।

रवींद्रनाथ ने कहा, अरे, मैं पागल! मैं एक टिमटिमे दीये को जला कर, गंदे दीये को जला कर, धुएं में बैठा हुआ सौंदर्य के शास्त्र को पढ़ता था! और सौंदर्य द्वार पर प्रतीक्षा करता था कि बुझाओ तुम दीया अपना और मैं भीतर आ जाऊं! और द्वार पर रुका था सौंदर्य, कि मैं सौंदर्य शास्त्र में उलझा था तो वह बाहर प्रतीक्षा करता था।

बंद कर दी किताब, निकल आए बजरे के बाहर। आकाश में चांद था, चारों तरफ मौन झील थी। उसकी बरसती चांदनी में वे नाचने लगे और कहने लगे, यह रहा सौंदर्य! यह रहा सौंदर्य! मैं कैसा पागल था कि किताब खोल कर सौंदर्य खोजता था! वहां अक्षर थे काले, वहां कागज थे, आदमी के बनाए हुए शब्द थे। सौंदर्य वहां कहां था?

लेकिन हम सब किताबों में खोजते हैं उसे जो चारों तरफ मौजूद है। हम किताबों में खोजते हैं उसे जो हर घड़ी सब तरफ मौजूद है। और जब किताबों में नहीं पाते तो फिर कहते हैं, नहीं होगा ईश्वर। क्योंकि मैंने पूरी किताबें पढ़ डालीं, मिला नहीं मुझे अब तक।

पागल हैं हम। जहां हम खोजते हैं वह आदमी की बनाई हुई किताबें, वहां ईश्वर कहां होगा? ईश्वर को देखना है तो वहां खोजो जहां आदमी का बनाया हुआ कुछ भी नहीं है। जहां आदमी के पहले जो था वह है। जिससे आदमी पैदा हुआ वह है। जिसमें आदमी खो जाएगा वह है। वहां खोजो।

ईश्वर का मतलब हैः वह जिससे सब निकलता, जिसमें सब होता, जिसमें सब लीन हो जाता, लेकिन जो सदा रहता है। ईश्वर का मतलब इतना है कि जिससे सब निकलता, जिसमें सब रहता, जिसके बिना कुछ भी नहीं रह सकता, जिसमें सब अंततः लीन हो जाता। लेकिन जो न मिटता है, न बनता है, न खोता है, न जाता है, न आता है--जो है। जो है सदा, उसका नाम ईश्वर है।

और हम? हम एक मंदिर बनाते हैं। वह मंदिर भी बनेगा और गिरेगा, क्योंकि जो भी बनता है वह मिटता है। हम एक मूर्ति बनाते हैं। जो भी बन गई है मूर्ति, वह कल गिरेगी और बिखर जाएगी। हम एक किताब रचते हैं। जो भी रचा जाता है वह नष्ट हो जाता है। जो भी बनता है, मिटता है, वह ईश्वर नहीं है।

लेकिन आदमी ने अपने थोथे और झूठे धर्म खड़े कर रखे हैं। क्यों कर रखे हैं खड़े?

इसलिए खड़े कर रखे हैं कि आज नहीं कल हर आदमी बाहर से ऊबता है और भीतर की तरफ जाता है। और जब भीतर की तरफ जाता है तो वहां दो रास्ते हैंः एक झूठे धर्म का रास्ता है, एक सच्चे धर्म का रास्ता है। सच्चे धर्म के रास्ते पर आदमी चला जाए तो उसका शोषण नहीं किया जा सकता। उसे झूठे धर्म के रास्ते पर ले जाओ, तो पंडे हैं, पुरोहित हैं, पुजारी हैं, मौलवी हैं, वे सब उसका शोषण कर सकते हैं।

आदमी को भटकाने वाले लोग नास्तिक नहीं हैं उतने, जितने कि पंडे हैं, पुजारी हैं, साधु हैं, संन्यासी हैं। जो शोषण करते हैं धर्म का। जो धर्म के नाम पर जीते हैं। जिन्होंने धर्म को आजीविका बना रखा है। जिन्होंने धर्म को धंधा बना रखा है। जो लोग भगवान को भी बेचते हैं और भगवान के बेचने पर जीते हैं। उन लोगों ने एक झूठा, एक सब्स्टीट्यूट रिलीजन, एक परिपूरक धर्म बना रखा है। इसके पहले कि कोई आदमी भीतर जाए, वे उस झूठे रास्ते पर उसे लगा देते हैं। उस रास्ते पर करोड़ों-करोड़ों लोग चल रहे हैं--हिंदुओं के नाम से, मुसलमानों के नाम से, ईसाइयों के नाम से। और वे करोड़ों-करोड़ों लोग कहीं भी नहीं पहुंचते। बाहर भी कहीं नहीं पहुंचता आदमी और भीतर भी गलत रास्ते को पकड़ कर कहीं भी नहीं पहुंचता।

कुछ थोड़े से लोग कभी भीड़ से चूक जाते हैं और उस रास्ते पर चले जाते हैं जो धर्म का रास्ता है। और ध्यान रहे, भीड़ कभी धर्म के रास्ते पर नहीं जाती। धर्म के रास्ते पर अकेले लोग जाते हैं। क्योंकि धर्म के रास्ते पर कोई राजपथ नहीं है, जिस पर करोड़ों लोग इकट्ठे चल सकें। धर्म का रास्ता पगडंडी की तरह है, जिस पर अकेला आदमी चलता है। दो आदमी भी साथ नहीं चल सकते।

और यह भी ध्यान रहे, धर्म का रास्ता कुछ रेडीमेड, बना-बनाया नहीं है, कि पहले से तैयार है, आप जाएंगे और चल पड़ेंगे। धर्म का रास्ता ऐसे ही है जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं। कोई रास्ता नहीं है बना हुआ, पक्षी उड़ता है और रास्ता बनता है, जितना उड़ता है उतना रास्ता बनता है। और ऐसा भी नहीं है कि एक पक्षी उड़े तो रास्ता बन जाए, तो दूसरा उसके पीछे उड़ जाए। फिर रास्ता मिट जाता है। उड़ा पक्षी, आगे बढ़ गया, आकाश में कोई निशान नहीं बनते।

ठीक धर्म के आकाश में भी एक-एक आदमी जाता है। बिना बंधे हुए रास्ते हैं। पाथलेस पाथ है। वहां कोई बंधा हुआ रास्ता नहीं है। पंथहीन पंथ है वहां। वहां कोई बंधी हुई पगडंडी नहीं है कि पहले से तैयार है, आप जाएंगे और चल पड़ेंगे। अगर ऐसा होता तो हम सारे लोगों को कभी का उस रास्ते पर ले गए होते। अज्ञात है, अनचार्टर्ड है, कोई नक्शा नहीं है पास में, कोई कुतुबनुमा नहीं है पास में जिससे पता चल जाए कि रास्ता कहां है। उस अनजान रास्ते पर अकेले उतरने की हिम्मत जिनकी है वे जरूर पहुंचते हैं परमात्मा तक।

लेकिन हिंदू घर में पैदा हो गया लड़का, तो हिंदुओं की भीड़ में सम्मिलित हो जाता है। वह कहे काशी जाओ, तो काशी जाता है। कहे द्वारिका जाओ, तो द्वारिका जाता है। कहे कि यह भगवान है, इसको पूजो, तो उनको पूजता है। मुसलमानों की भीड़ में पैदा हो गया, कहे मक्का जाओ, तो मक्का जाता है। ईसाइयों की भीड़ में पैदा हो गया, कहा कि जेरुसलम जाओ, तो जेरुसलम जाता है। भीड़ के पीछे चलता है आदमी। और जो आदमी भीड़ के पीछे चलता है वह आदमी झूठे धर्म के रास्ते पर चलेगा। जो आदमी अकेला चलने की हिम्मत जुटाता है वह आदमी धर्म के रास्ते पर जा सकता है।

इसलिए दो बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं। बाहर की जिंदगी बेमानी है। बाहर की जिंदगी का बहुत अंतिम अर्थ नहीं है। रेत पर खींची गई लकीरों की तरह वह जिंदगी है। हवाएं आएंगी और सब रेत पुंछ जाएगी। कितने लोग हमसे पहले रहे हैं इस पृथ्वी पर! जहां हम बैठे हैं उस जमीन में नामालूम कितने लोगों की कब्र बन गई होगी। जिस रेत पर हम बैठे हैं वह रेत नामालूम कितने लोगों की जिंदगी की राख का हिस्सा है। कितने लोग इस पृथ्वी पर रहे हैं और कितने लोग खो गए हैं! आज कौन सा उनका निशान है? कौन सा उनका ठिकाना है? उन्होंने क्या नहीं सोचा होगा, क्या नहीं किया होगा! कितने-कितने...

मैं सुनता हूं कि द्वारिका सात बार बनी और बिगड़ी। सात करोड़ बार बन-बिगड़ गई होगी। कुछ पता नहीं है। इतना अंतहीन है विस्तार यह सब, इसमें सब रोज बनता है और बिगड़ जाता है। लेकिन कितने सपने देखे होंगे उन लोगों ने! कितनी इच्छाएं की होंगी कि ये बनाएं, ये बनाएं। सब राख और रेत हो गया, सब खो गया। हम भी खो जाएंगे कल। हमारे भी बड़े सपने हैं। हम भी क्या-क्या नहीं कर लेना चाहते हैं! लेकिन समय की रेत पर सब पुंछ जाता है। हवाएं आती हैं और सब बह जाता है।

बाहर की जिंदगी का बहुत अंतिम अर्थ नहीं है। बाहर की जिंदगी खेल से ज्यादा नहीं है। हां, ठीक से खेल लें, इतना काफी है। क्योंकि ठीक से खेलना भीतर ले जाने में सहयोगी बनता है। लेकिन बाहर की जिंदगी का कोई बहुत मूल्य नहीं है। तो कुछ लोग बाहर की जिंदगी में खोकर भटक जाते हैं। फिर कुछ लोग भीतर की तरफ चलते हैं तो वहां एक गलत रास्ता बनाया हुआ है। वहां धर्म के नाम पर दुकानें लगी हैं। वहां धर्म के नाम पर हिंदू, मुसलमान, ईसाइयों के पुरोहित बैठे हैं। वहां धर्म के नाम पर आदमी के बनाए हुए ईश्वर, आदमी के बनाए हुए देवता, आदमी की बनाई हुई किताबें बैठी हैं। वे भटका देती हैं। बाहर से किसी तरह आदमी बचता है--कुएं से बचता है और खाई में गिर जाता है। उस भटकन में चल पड़ता है।

उस भटकन से कुछ लोगों को फायदा है। कुछ लोग शोषण कर रहे हैं। हजारों साल से कुछ लोग इसी का शोषण कर रहे हैं--आदमी की इस कमजोरी का, आदमी की इस नासमझी का, आदमी की इस असहाय अवस्था का--कि आदमी जब बाहर से भीतर की तरफ मुड़ता है तो वह अनजान होता है, उसे कुछ पता नहीं होता कि कहां जाऊं?

वहां गुरु खड़े हुए हैं। वे कहते हैं, आओ, हम तुम्हें रास्ता बताते हैं। हमारे पीछे चलो। हम जानते हैं।

और ध्यान रहे, जो आदमी कहता है, मैं जानता हूं, मेरे पीछे आओ, यह आदमी बेईमान है। क्योंकि धर्म की दुनिया में जो आदमी प्रविष्ट होता है उसका मैं ही मिट जाता है, वह यह भी कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि मैं जानता हूं। सच तो यह है कि वहां कोई जानने वाला नहीं बचता, वहां कुछ जाना जाने वाला नहीं होता। वहां जानने वाला भी मिट जाता है, जो जाना जाता है वह भी मिट जाता है। वहां न ज्ञाता होता है न ज्ञेय।

इसलिए जो जान लेता है वह यह नहीं कहता कि मैं जानता हूं, आओ मैं तुम्हें ले चलूंगा। और जो जान लेता है वह यह भी जान लेता है कि कोई कभी किसी दूसरे को नहीं ले गया है। प्रत्येक को स्वयं जाना पड़ता है। धर्म की दुनिया में कोई गुरु नहीं होते।

लेकिन वह जो पाखंड का धर्म है वहां गुरुओं के अड्डे हैं। इसलिए ध्यान रहे, जो गुरु के पीछे जाएगा वह कभी परमात्मा तक नहीं पहुंचता। क्योंकि वे गुरुओं की दुकानें अपने पीछे ले जाती हैं और आदमी के बनाए हुए जाल में उलझा देती हैं। करोड़ों-करोड़ों लोग चींटियों की तरह यात्रा करते रहते हैं पीछे एक-दूसरे के।

यह सारी की सारी यात्रा व्यर्थ है। न कोई धर्म का तीर्थ है, न कोई धर्म का मंदिर है, न कोई धर्म की किताब है, न कोई धर्मगुरु है। और जब तक हम इन बातों में भटके रहेंगे, तब तक हम कभी भी धर्म को नहीं जान सकते।

लेकिन आप कहेंगे, फिर हम क्या करें? अगर हम गुरु के पीछे न जाएं तो हम कहां जाएं?

किसी के पीछे मत जाओ! ठहर जाओ! किसी के पीछे मत जाओ! और तुम वहां पहुंच जाओगे जहां पहुंचना जरूरी है। कुछ चीजें हैं जहां चल कर पहुंचा जाता है और

कुछ चीजें ऐसी हैं जहां रुक कर पहुंचा जाता है। धर्म ऐसी ही चीज है, वहां चल कर नहीं पहुंचना पड़ता।

यह कभी शायद सोचा नहीं होगा।

मैं द्वारिका तक आया तो मुझे यात्रा करके आना पड़ा, क्योंकि मेरे और आपके बीच में फासला था। फासले को पूरा करना पड़ा। अगर मैं अभी उठ कर आपके पास आऊं तो मुझे चलना पड़ेगा, क्योंकि आपके और मेरे बीच में दूरी है, दूरी को पार करना पड़ेगा। लेकिन आदमी और परमात्मा के बीच में दूरी ही नहीं है। इसलिए चलने का सवाल नहीं है वहां। वहां जो चलेगा वह भटक जाएगा। वहां जो ठहर जाता है वह पहुंच जाता है।

इसलिए पहली बात ठीक से समझ लेनाः वहां चल कर नहीं पहुंचना है। इसलिए किसी गुरु की जरूरत नहीं है, किसी वाहन की जरूरत नहीं है, किसी यात्रा की जरूरत नहीं है। वहां तो वे पहुंचते हैं जो सब तरह से रुक जाते हैं और ठहर जाते हैं।

बुद्ध एक गांव से गुजरते थे, एक पहाड़ से गुजरते थे। कुछ मित्रों ने कहा कि वहां मत जाएं! वहां एक आदमी पागल हो गया है और वह आदमियों की गरदनें काट कर उनकी अंगुलियां निकाल कर उनकी मालाएं बनाता है। उसने एक हजार आदमियों को मारने का व्रत लिया है। नामालूम कितने लोगों को मार चुका है। वह रास्ता बंद हो गया है, अब कोई वहां जाता नहीं। आप भी मत जाएं!

बुद्ध ने कहा, वह बेचारा प्रतीक्षा करता होगा। कोई भी नहीं जाएगा तो बहुत निराश होगा। मुझे जाने दो। फिर मुझे मृत्यु का कोई भय भी नहीं है, क्योंकि अब मैं वहां पहुंच गया जहां मृत्यु नहीं होती। तो मैं जाता हूं।

नहीं माने वे, वे चले गए उस रास्ते पर। वह आदमी, अंगुलीमाल नाम का आदमी, अपने फरसे पर धार रखता था एक पहाड़ के पास बैठ कर। उसने बुद्ध को आते देखा। वह हैरान हुआ! महीनों से कोई भी नहीं आता था उस रास्ते पर, शायद इस भिक्षु को कुछ पता नहीं है। नादान, निर्दोष, चुपचाप चला आता है! उसे दया आई, इस भोले से आदमी को देख कर उसे भी दया आई। उसने फरसा ऊपर उठा कर चिल्ला कर कहा कि रुक जाओ वहीं! आगे मत बढ़ना, नहीं तो मैं गरदन काट लूंगा। वापस लौट जाओ! अगर एक कदम आगे बढ़े तो जिंदगी खतरे में है।

लेकिन बुद्ध बढ़ते चले गए। वह आदमी फिर चिल्लाया कि सुनते नहीं हो? बहरे हो? बुद्धि नहीं है? लौट जाओ, आगे मत बढ़ो, अन्यथा गरदन कट जाएगी!

बुद्ध ने कहा, पागल, मैं तो बढ़ ही नहीं रहा, मैं तो जमाना हुआ तभी से ठहर गया हूं। मैं कहां बढ़ रहा हूं! तू बढ़ रहा है।

अब बड़ी अजीब बात हो गई। वह आदमी खड़ा था फरसा लिए, बढ़ नहीं रहा था। और बुद्ध चल रहे थे उसकी तरफ। और कहने लगे, मैं नहीं बढ़ रहा हूं, तू बढ़ रहा है। उस आदमी ने कहा, आदमी पागल मालूम होता है। तुम पागल हो! एक तो तुम आए इस तरफ, यही पागलपन है। और दूसरा अब तुम यह पागलपन कर रहे हो कि चलते हो खुद और कहते हो मैं ठहरा हुआ हूं और मुझ ठहरे हुए को बताते हो कि तू चल रहा है।

बुद्ध ने कहा, सच, मैं तुझसे यही कहता हूं। जब तक मन चलता था तब तक मैं चलता था। अब मन ठहर गया, अब मैं नहीं चलता हूं। और तेरा मन चल रहा है तो तू चल रहा है। और मैं तुझे एक अजीब बात बताता हूंः जब से मैं ठहर गया तब से मैंने वह सब पा लिया जो पाने जैसा था। और जब तक चलता था तब तक वह सब खो दिया था जो अपना था और उस सबको पकड़ लिया था जो अपना नहीं था। और जो अपना नहीं था, वह लाख उपाय करो तो भी अपना नहीं हो सकता। और जो अपना है, उसे हम भूल ही सकते हैं, वस्तुतः कभी खो नहीं सकते। बुद्ध ने कहा, मैं रुक गया और पा लिया।

वह आदमी कुछ भी नहीं समझा। उसने कहा, कहां की बातें कर रहे हो? कैसा रुकना? कैसा पाना? किसको पाने की बात कर रहे हो?

बुद्ध ने उस आदमी से कहा, जब तक तू बाहर देखता रहेगा, तुझे पता भी नहीं चलेगा कि भीतर भी कुछ पाने जैसा है। लेकिन वह पाने की तरकीब रुक जाना है, ठहर जाना है।

लेकिन हम? हम सोचते हैं कि धर्म के रास्ते पर भी कहीं जाना पड़ेगा। और इसलिए गुरु शोषण करता है। गुरु कहता है, हम ले जा सकते हैं, हम पहुंचा देंगे।

वहां जाने का नहीं है कहीं भी। वहां ठहर जाने का है। बाहर से भीतर में आओ। और भीतर कहीं मत जाओ, ठहर जाओ। और वहां पहुंच जाओगे जहां परमात्मा है।

यह सूत्र ठीक से समझ लें। बाहर से भीतर मुड़ आओ। और भीतर कहीं मत जाओ, ठहर जाओ, रुक जाओ, भीतर चलो ही मत। और वहां पहुंच जाओगे जिसका नाम परमात्मा है। वह भीतर मौजूद है। एक बार हम रुक कर उसे देख लें, तो वह हमारी पहचान में आ जाता है। क्योंकि हम वही हैं।

लेकिन गुरु कहता है, हम चलाएंगे। हमारे अनुयायी बनो, हम जो कहते हैं वह मानो, हम जिस दिशा में कहते हैं उस दिशा में चलो। और फिर बस गलत धर्म पर चलना शुरू हो गया, फिर हम भटकेंगे, भटकेंगे... । और बाहर से तो बचना आसान है, भीतर के इस गलत रास्ते से बचना बहुत मुश्किल है। क्योंकि बाहर जो जिंदगी है वह जिंदगी अपने आप उकसाती है, हमें जगाती है भीतर जाने को। लेकिन भीतर अगर हमने एक सपने का रास्ता पकड़ लिया तो वहां से कोई जागरण नहीं है, वहां निद्रा गहरी होती चली जाती है और आदमी खो जाता है।

यह दुनिया में जो इतना अधर्म है, इस अधर्म का कारण नास्तिक नहीं हैं, इस अधर्म का कारण अधार्मिक नहीं हैं, इस अधर्म का कारण ईश्वर-विरोधी नहीं हैं। इस अधर्म का कारण वे लोग हैं जो धर्म के नाम पर एक मिथ्या-धर्म की लकीर पीटते हैं और उस लकीर के रास्ते पर लोगों को भटकाते हैं।

करोड़ों-करोड़ों लोगों को करोड़ों-करोड़ों वर्षों से धर्मगुरुओं ने भटकाया है। और वे आज भी भटका रहे हैं। हिंदू को मुसलमान से लड़ा रहे हैं, जैन को हिंदू से लड़ा रहे हैं, ईसाई को बौद्ध से लड़ा रहे हैं। सारी दुनिया में धर्मगुरु झगड़ों के अड्डे हैं।

धर्म का झगड़े से क्या संबंध हो सकता है? मंदिर और मस्जिद का अगर धर्म से कोई संबंध हो, तो झगड़ा नहीं हो सकता। लेकिन नहीं, अब तक आदमी इन्हीं झगड़ों में नष्ट हुआ है। और व्यर्थ की चीजें एक-एक आदमी को पकड़ाई जा रही हैं। किसी को कहा जा रहा है कि माला फेरो। किसी को कहा जा रहा है कि उठो-बैठो, कवायद करो--इसका नाम नमाज है। किसी को कहा जा रहा है कि कान में, आंख में अंगुलियां डालो--इसका नाम सामायिक है। किसी को कुछ समझाया जा रहा है, किसी को कुछ समझाया जा रहा है। इन सारी झूठी और पाखंड की बातों में आदमी को भटकाया जा रहा है। किसी को कहा जा रहा है राम-राम जपो, किसी को कहा जा रहा है कृष्ण-कृष्ण जपो, किसी को कहा जा रहा है अल्लाह-अल्लाह करो।

लेकिन कुछ भी चिल्लाओ, कुछ भी चिल्लाओ, वहां नहीं पहुंचोगे। वहां वे पहुंचते हैं, जिनकी वाणी भी ठहर जाती है, शब्द भी ठहर जाते हैं, विचार भी ठहर जाते हैं। वहां न राम-राम चिल्लाने की जरूरत है, न कृष्ण-कृष्ण चिल्लाने की जरूरत है। क्योंकि चिल्लाने से वहां कोई पहुंचता नहीं। वहां चुप हो जाने की जरूरत है, वहां मौन हो जाने की जरूरत है। वहां केवल वे पहुंचते हैं जो सब भांति मौन हो जाते हैं, सब भांति साइलेंट हो जाते हैं, सब भांति चुप हो जाते हैं। चुप्पी ले जाती है वहां।

लेकिन चुप्पी के ऊपर शोषण नहीं किया जा सकता। शब्दों के नाम पर शोषण किया जा सकता है। शब्दों के नाम पर संप्रदाय बनाए जा सकते हैं। शब्दों के नाम पर लोगों को लड़ाया जा सकता है।

कैसा मजा है, राम को मानने वाला कृष्ण को मानने वाले से लड़ जाता है! हद्द हो गई पागलपन की। दोनों के दिमाग के इलाज की जरूरत है। आदमी को पागल करने की हद्द हो गई, राम और कृष्ण को मानने वाला भी लड़ जाता है! मोहम्मद और महावीर को मानने वाला लड़े, थोड़ी बात समझ में आ सकती है कि बड़े फासले पर ये लोग हुए। लेकिन राम और कृष्ण जैसे लोगों को मानने वाला भी लड़ जाता है। और यह भी मजा है, कृष्ण के भी मानने वाले दो ढंग से मान सकते हैं और लड़ सकते हैं। ये हमने लड़ाई की तरकीबें खोजी हैं या परमात्मा के पास जाने के रास्ते खोजे हैं?

मैं आपसे कहना चाहता हूंः उसका कोई नाम नहीं है। न राम उसका नाम है, न कृष्ण उसका नाम है, न महावीर, न बुद्ध। उसका कोई नाम नहीं है। इसलिए जब तक नाम की पकड़ रहेगी, क्लिंगिंग रहेगी, तब तक वह नहीं मिलेगा। सब नाम छूट जाएं--वह नेमलेस है, वह नामरहित है, वह अनाम है--जब चित्त सारे नाम छोड़ देता है, सारे शब्द छोड़ देता है, सारे शास्त्र छोड़ देता है, सारे विचार छोड़ देता

है, सब छोड़ देता है, चुपचाप खड़ा रह जाता है, तब आदमी वहां पहुंच जाता है जहां पहुंचने की हमारी आकांक्षा है।

लेकिन हम सब जकड़े हैं और बंधे हैं। हमने सबने खूंटियां गाड़ रखी हैं और उन खूंटियों से हम बंधे हुए हैं।

एक छोटी सी कहानी से मैं समझाऊं।

एक रात एक गांव में कुछ मित्र एक मधुशाला में इकट्ठे हुए। उन्होंने देर तक खूब शराब पी डाली। फिर वे बाहर निकले। फिर उनमें से किसी एक ने कहा कि चांद निकला है पूरा, चलो हम नदी पर चलें, चलो हम नौका-विहार करें। वे नदी पर गए। उन्होंने एक नाव में बैठ कर पतवारें उठा लीं। मछुए अपने घर जा चुके थे नावों को बांध कर। पतवारें उठा कर उन्होंने नाव खेनी शुरू कर दी। वे रात भर नाव खेते रहे।

सुबह जब हवाएं चलीं, ठंडक बढ़ी, सूरज के निकलने का वक्त आया, उनको थोड़ा होश आया। और उनमें से किसी एक ने कहा, हम नामालूम कितने दूर निकल आए हों, अब वापस लौट चलना चाहिए। लेकिन उतर कर देख लो कि हम कहां आ गए हैं--पूरब कि पश्चिम? हम कितने दूर हैं? हम कहां हैं? एक आदमी नीचे उतरा, नीचे उतर कर हंसने लगा। मित्रों ने पूछा, क्यों हंसते हो? उसने कहा कि तुम भी उतर आओ। हम कहीं भी नहीं गए हैं, हम वहीं खड़े हैं जहां रात नौका खड़ी थी। वे पूछने लगे, लेकिन हो क्या गया? तो उस आदमी ने कहा, हुआ कुछ भी नहीं; हम नौका की जंजीर खोलना भूल गए। वह किनारे से ही बंधी है और हम रात भर पतवारें चलाते रहे।

रात भर पतवार चलाओ, इससे कोई कहीं नहीं पहुंच जाता; नौका की जंजीर खुली होनी जरूरी है। किनारे से खोलना जरूरी है। मनुष्य का मन जब तक किसी चीज से बंधा है तब तक परमात्मा के सागर में यात्रा नहीं हो सकती। मनुष्य का चित्त जब तक किसी चीज से बंधा है--चाहे वह धन हो, चाहे वह धर्म हो; चाहे वह पत्नी हो, चाहे अपना ही गढ़ा हुआ परमात्मा हो; चाहे वह मोक्ष हो, चाहे वह स्वर्ग हो; चाहे वह गृहस्थी हो और चाहे वह संन्यास हो--जब तक आदमी का चित्त कहीं भी बंधा है, कोई भी क्लिंगिंग, कोई भी पकड़ आदमी को धर्म के सागर में प्रवेश नहीं होने देती।

एक ऐसा चित्त चाहिए जो अनबंधा है, जो कहीं भी बंधा नहीं, जिसका कोई बंधन नहीं है। जो न हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न कृष्ण को मानने वाला है, न राम को मानने वाला है। जो मानने वाला ही नहीं है। जो आस्तिक भी नहीं है, जो नास्तिक भी नहीं है। जो न यह मानता है, न वह मानता है। जो न इस किताब को पूजता है, न उस किताब को पूजता है। जो एकदम खाली है, जिसकी कोई पकड़ नहीं है। वह तत्क्षण वहां पहुंच जाता है जहां प्रभु का सागर है।

जापान के एक छोटे से गांव में सुबह ही सुबह तीन मित्र घूमने निकले हैं। उन्होंने देखा कि पहाड़ी के पास एक भिक्षु खड़ा है सुबह की चमकती रोशनी में। सूरज की किरणें उसके ऊपर पड़ रही हैं। वह आंख बंद किए हुए खड़ा है। वे तीनों सोचने लगेः यह भिक्षु वहां पहाड़ी पर खड़े होकर क्या करता होगा?

एक ने कहा... जैसा कि लोगों की आदत होती है, जिस संबंध में हमें कुछ भी पता नहीं होता उस संबंध में हम मंतव्य देने से नहीं चूकते। अगर आदमी इतना भी तय कर ले कि जो उसे पता नहीं है उस संबंध में कुछ भी नहीं कहेगा, तो दुनिया से अज्ञान आधे से ज्यादा इसी वक्त खत्म हो जाए। लेकिन हर आदमी बिना जाने भी कहने की हिम्मत जुटाता है। बल्कि सच तो यह है कि जो जितना कम जानता है उतनी ज्यादा कहने की हिम्मत जुटाता है। जानने वाला थोड़ा डरे भी, नहीं जानने वाला बिल्कुल नहीं डरता। जहां बुद्धिमान भी जाने से डरते हैं वहां मूढ़ एकदम प्रविष्ट हो जाते हैं।

उस आदमी ने कहा, मैं जानता हूं। उस भिक्षु की कभी-कभी गाय खो जाती है। वह अपनी गाय खोजने के लिए पहाड़ी पर खड़े होकर यहां-वहां देख रहा है कि गाय कहां है।

बाकी दो लोगों ने कहा, धन्य हो महाशय! वह आदमी आंख बंद किए हुए खड़ा है। जिसको गाय खोजनी होती है वह आंख बंद करके खड़ा हुआ देखा गया है?

दूसरे मित्र ने कहा कि नहीं, गाय-वाय नहीं खोज रहा है। उसके साथ कभी-कभी कोई मित्र घूमने आते हैं, वे पीछे रह गए होंगे, वह खड़े होकर प्रतीक्षा कर रहा है।

तीसरे आदमी ने कहा, छोड़ो भी! जो आदमी किसी की प्रतीक्षा करता है वह कभी पीछे लौट कर भी देखता है। वह आदमी एक भी दफा पीछे लौट कर नहीं देखा। मैं समझता हूं, तीसरे ने कहा, कि वह आदमी भगवान का स्मरण कर रहा है।

विवाद बढ़ गया। फिजूल की बातों पर लोगों के विवाद बढ़ जाते हैं। अब उस बेचारे भिक्षु से तीनों को कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन तीनों का विवाद हो गया। और उन तीनों ने कहा कि फिर अब एक ही रास्ता है कि हम चल कर उस भिक्षु से पूछें कि तुम क्या कर रहे हो? वे तीनों पहाड़ पर चढ़ कर गए। फिजूल के कामों में लोग पहाड़ भी चढ़ जाते हैं। वे तीनों थके-मांदे पहाड़ के ऊपर पहुंचे। और उस भिक्षु के पास पहले आदमी ने जाकर कहा कि भिक्षु जी, मैं सोचता हूं कि आपकी गाय खो गई है। आप उसकी खोज-बीन कर रहे हैं?

भिक्षु ने आंख खोली और उसने कहा, कैसी गाय! मेरा कुछ है ही नहीं दुनिया में तो खोएगा कैसे? मेरा कुछ है ही नहीं तो खोएगा कैसे? मैं अकेला हूं, मेरा कुछ भी नहीं है। न मैं कुछ लेकर आया हूं, न मैं कुछ लेकर जा सकता हूं। इसलिए इस भ्रम में भी नहीं पड़ता हूं कि कुछ मेरा है। जो मैं लाया नहीं वह मेरा कैसे हो सकता है? और जिसे मैं ले जाऊंगा नहीं वह मेरा कैसे हो सकता है? इसलिए इस झंझट में मैं पड़ता नहीं, इस भ्रम में पड़ता नहीं कि कुछ मेरा है। चीजें मेरे आस-पास हैं, मेरा कुछ भी नहीं है।

वह आदमी हार कर पीछे हट गया। दूसरे मित्र ने कहा कि तब तो निश्चय ही आपका कोई मित्र पीछे छूट गया है, आप उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उस भिक्षु ने कहा, न मेरा कोई शत्रु है, न मेरा कोई मित्र। जब मेरा कोई शत्रु ही नहीं है तो मेरा मित्र होने का सवाल नहीं उठता। और मैं किसी को पीछे छोड़ कर नहीं आया, क्योंकि कोई मेरे साथ ही नहीं है, मैं निपट अकेला हूं। सभी निपट अकेले हैं। लेकिन यह भ्रम पैदा कर लेते हैं कि कोई साथ है, तब लगता है कि कोई पीछे छूट गया, कोई आगे निकल गया। कोई मेरे साथ ही नहीं है, मैं बिल्कुल अकेला हूं। मैं किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा हूं। मैं किसी की क्यों प्रतीक्षा करूं? कितनी ही प्रतीक्षा करो, कोई कभी मिलता है? कितनी ही राह देखो, कोई कभी आता है? आदमी अकेला है; अकेला जीता है, अकेला खो जाता है। उसने कहा, नहीं-नहीं, किसी की प्रतीक्षा मैं नहीं करता हूं। मेरा कोई मित्र नहीं, कोई शत्रु नहीं, मैं बिल्कुल अकेला हूं।

दूसरा आदमी भी हार कर पीछे हट गया। तीसरे आदमी ने कहा, तब तो निश्चित ही मैं सही हूं और मेरी जीत निश्चित है। और उसने आकर भिक्षु को कहा, निश्चित ही आप भगवान का स्मरण कर रहे हैं।

उसने कहा, कौन भगवान! कैसा भगवान! मैं किसी भगवान को जानता ही नहीं तो स्मरण कैसे करूंगा? स्मरण उसका किया जाता है जिसे हम जानते हैं। और अगर, वह भिक्षु कहने लगा, जिसे हमने जान ही लिया, फिर स्मरण की क्या जरूरत रह जाती है? नहीं जानते तो स्मरण कर नहीं सकते और जान लिया तो स्मरण की जरूरत क्या है? और भगवान अगर मुझसे अलग हो तो मैं स्मरण करूं, अगर मैं ही वही हूं तो अपना ही क्या स्मरण करूं! और फिर भगवान का कोई नाम हो तो हम याद भी करें, उसका कोई नाम नहीं तो याद कैसे करें? मैं किसी भगवान का स्मरण नहीं कर रहा।

तो वे तीनों घबड़ा गए और उन तीनों ने पूछा कि फिर आप कर क्या रहे हैं? व्हाट आर यू डूइंग हियर? करते क्या हो यहां खड़े-खड़े?

तो उस भिक्षु ने कहा, अगर तुम पूछते ही हो तो मैं कहना चाहता हूंः मैं कुछ भी नहीं कर रहा हूं, मैं सिर्फ हूं। मैं सिर्फ हूं, मैं कुछ कर नहीं रहा हूं।

समझते हैं इसका मतलब क्या हुआ?

जो आदमी किसी क्षण में कुछ भी नहीं करता--न सोचता, न करता, न याद करता, न कल्पना करता, न सपना देखता, न शास्त्र पढ़ता, न भजन, न कीर्तन, न नाम, न मूर्ति, न प्रार्थना, न आराधना--एक क्षण को भी अगर आदमी कुछ भी न कर रहा हो, सिर्फ हो जाए, उसी क्षण में वह भगवान से मिल जाता है। उसी क्षण धर्म के द्वार खुल जाते हैं। उसी क्षण जो बंद था वह प्रकट हो जाता है। उसी क्षण जो अंधेरे में था वह आलोकित हो जाता है। उसी क्षण, जो खोया हुआ लगता था, वह कभी नहीं खोया पता चल जाता है। उसी क्षण जीवन की तृष्णा, दौड़, सब समाप्त हो जाती है। उसी क्षण जीवन का सारा दुख विलीन हो जाता है। उसी क्षण वे फूल खिल

जाते हैं जो शांति के हैं, आनंद के हैं, नृत्य के हैं। उसी क्षण वे सारी सुगंधें व्यक्तित्व से निकलने लगती हैं जिन्हें कोई प्रेम कहता है, कोई अहिंसा कहता है, कोई करुणा कहता है। उसी क्षण जीवन में वे सारे सौरभ प्रकट होने लगते हैं जिसको कोई ब्रह्मचर्य कहे, कोई तप कहे, कोई त्याग कहे।

लेकिन ये सारी चीजें अनायास होनी शुरू हो जाती हैं। लोग कहते हैं कि ब्रह्मचर्य से मिलता है ईश्वर। लोग कहते हैं, त्याग से मिलता है ईश्वर। लोग कहते हैं, अहिंसा से मिलता है ईश्वर। लोग कहते हैं, तपश्चर्या से मिलता है ईश्वर। और मैं कहना चाहता हूं, यह बात उलटी है। ईश्वर के मिलने से ये सारी चीजें मिल जाती हैं, इन सबके मिलने से ईश्वर नहीं मिलता। क्योंकि ईश्वर के बिना मिले इनमें से कुछ भी नहीं मिल सकता है। ईश्वर मिल जाए तो यह सब मिल जाता है।

ये ईश्वर के मिलने पर खिले हुए फूल हैं। यह ईश्वर से मिल जाने पर आई हुई जीवन में सुगंध है। यह ईश्वर की अनुभूति से आया हुआ अनुभव है। जैसे कोई कहे कि अंधेरा हट जाए तो प्रकाश जल जाता है, तो हम कहेंगे, गलत है। प्रकाश जल जाए तो अंधेरा जरूर हट जाता है। ईश्वर प्रकट हो जाए तो सब प्रकट हो जाता है।

जीसस ने कहा है एक बहुत अदभुत वचन। और कहा है यहः फर्स्ट यी सीक दि किंगडम ऑफ गॉड, देन आल एल्स शैल बी एडेड अनटु यू। पहले तू ईश्वर का राज्य खोज और फिर शेष सब तुझे मिल जाएगा। पहले तू ईश्वर को खोज और फिर शेष सब आ जाएगा। पहले तू उसके द्वार को खोल और फिर सब कुछ तुझे मिल जाएगा।

लेकिन हम? हम उसका द्वार खोलना नहीं जानते। और जो बताने वाले हैं वे हमें आदमियों के बनाए हुए मंदिरों और मस्जिदों के द्वार बताते हैं कि इनको खोलो और इनके भीतर आ जाओ। उनके भीतर कुछ भी नहीं है, वे आदमियों के बनाए हुए मकान हैं। लेकिन एक हमारे भीतर भी मंदिर है जो आदमी का बनाया हुआ नहीं है। जो हमारा बनाया हुआ नहीं है। जो हमारे भीतर है और हमने पाया है। वह भी खुल सकता है। लेकिन वह शांति के, मौन के उस क्षण में खुलता है, जब हम कुछ भी नहीं कर रहे होते हैं।

इसलिए धार्मिक क्रिया जैसी चीज ही नहीं होती। धार्मिक क्रिया जैसी चीज हो ही नहीं सकती है। धार्मिक होने का अर्थ है अक्रिया में होना। और धर्म के नाम पर जितनी क्रियाएं हैं सब पाखंड है, सब क्रियाकांड है, सब धोखा है। धार्मिक क्रिया होती ही नहीं। जो अक्रिया में होता है वह धर्म को उपलब्ध हो जाता है। इस दिशा में जो चलता है उसे जीवन का अर्थ मिलता है, उसे जीवन की धन्यता मिलती है। वह जान पाता है कि जीवन क्या है। वह जान पाता है कि जीवन में कितने रहस्य, कितने आनंद छिपे हैं। जीवन के खजाने कितने हैं। उसकी मृत्यु मिट जाती है, दुख मिट जाता है, अंधकार मिट जाता है।

एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।

एक बहुत बड़ी राजधानी में एक भिक्षु था, तीस वर्षों तक भीख मांगता रहा। फिर उसकी मौत आई, फिर वह मरा। एक ही जगह बैठ कर उसने तीस साल तक भीख मांगी। तीस साल तक हाथ फैलाए रहा, जो भी आदमी निकला उसके सामने। फिर मर गया। मरने पर पड़ोस के लोगों ने उसके चीथड़ों में आग लगा दी, उसके गंदे बर्तन फिंकवा दिए, उस भिक्षु की लाश जलवा दी। और फिर किसी समझदार को ख्याल आया कि एक ही जमीन के टुकड़े पर बैठे-बैठे तीस साल में उसने जमीन भी गंदी कर दी है, थोड़ी जमीन का टुकड़ा भी उखाड़ कर बदल दो।

मिट्टी खोदते थे तो चमत्कार हुआ। हैरान हो गए लोग, सारी राजधानी वहां इकट्ठी हो गई, खुद सम्राट भी देखने आया। वह भिक्षु जहां बैठा था, थोड़ी ही जमीन खोदने पर वहां इतना बड़ा खजाना था कि काश उस भिक्षु को मिल जाता तो वह पृथ्वी का सबसे बड़ा धनपति हो जाता! सारे गांव के लोग कहने लगे, बड़ा पागल था! भीख मांगता रहा फिजूल। अपनी जमीन न खोद ली। अन्यथा इतना बड़ा मालिक हो जाता, इतना खजाना मिल जाता। उस गांव का हर आदमी यही कहने लगा।

मैं भी उस गांव में गया था, उस भीड़ में मैं भी खड़ा था, मुझे भी हंसी आ गई। लोग मुझसे पूछने लगे, किस पर हंसते हो?

मैंने कहा, उस भिक्षु पर नहीं; तुम पर! क्योंकि मुझे लगता हैः तुम भी जिस जमीन पर खड़े हो वहां इससे भी बड़े खजाने गड़े हैं। लेकिन तुम कभी वहां झांक कर नहीं देखोगे। तुम दूसरे मंदिरों में खोजोगे उसे, जो तुम्हारे

भीतर है। तुम संपत्ति के लिए दूसरों के सामने हाथ फैलाओगे, जो तुम्हारे भीतर है। तुम ज्ञान के लिए गुरुओं के चरण पकड़ोगे, जो ज्ञान तुम्हारे भीतर है। तुम शास्त्रों में, मरे हुए शास्त्रों में खोजोगे उसे, जो जिंदा शास्त्र की तरह तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है।

लेकिन हम सब बाहर खोजते हैं, क्योंकि हम सब भिखमंगे हैं। और अगर हम भीतर खोजें तो हम सब सम्राट हो सकते हैं। धर्म सम्राट बनाना चाहता है उन्हें, जो भिखमंगे हो गए हैं। धर्म सम्राट बनने की कला है।

मेरी ये बातें इतनी शांति और प्रेम से सुनीं, उससे मैं बहुत अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

छठवां प्रवचन

संन्यासः परम मुक्त जीवन

संन्यास का जो गहरे से गहरा अर्थ हैः पहले तो यह कि जो व्यक्ति संसार को घर मानता है वह गृहस्थी है और जो व्यक्ति संसार को सिर्फ एक पड़ाव मानता है वह संन्यासी है। संसार मुकाम है, बीच का पड़ाव; अंतिम मंजिल नहीं है। ऐसा जिसे दिखाई पड़ना शुरू हो गया वह संन्यासी है। तब वह संसार से गुजरता है, लेकिन वैसे ही जैसे तुम किसी रास्ते से गुजरते हो। गुजरते हो रास्ते से, बिल्कुल ठीक; लेकिन रास्ते को निवास स्थान नहीं बना लेते। उसी रास्ते से वह आदमी भी गुजर सकता है जिसके लिए रास्ता मंजिल हो गया, जिसके लिए रास्ता मंजिल मालूम पड़ता है।

एक ही संसार से हम गुजरते हैं। और जिस व्यक्ति को लगता है कि संसार ही अंत है वह गृहस्थी है। गृहस्थ से मेरा अर्थ हैः संसार को जिसने घर समझा। संन्यास से मेरा अर्थ है कि संसार को जिसने घर नहीं समझा, सिर्फ मार्ग समझा, राह समझी बीच की, जिसे गुजार देनी है, जिससे गुजर जाना है।

निश्चित ही दोनों की दृष्टि में और दोनों के व्यवहार में बहुत फर्क पड़ जाएंगे। जिस रास्ते से तुम्हें गुजर जाना है उसमें तुम आसक्त नहीं बनोगे। वहां तुम्हें रुकना नहीं है, वहां तुम आसक्ति की जड़ें नहीं फैलाओगे। जहां से पार हो जाना है वहां तुम दर्शक से ज्यादा नहीं रहोगे। जहां तुम्हें ठहरना नहीं है वहां तुम कोई स्थायी इंतजाम नहीं कर लोगे। वहां सभी व्यवस्था अस्थायी होगी, कामचलाऊ होगी। वहां तुम लोहे के और पत्थर के मकान नहीं बनाओगे। वहां तुम तंबू ही गाड़ोगे, जिनको तुम सुबह उखाड़ लोगे खूंटियों को और चल पड़ोगे। संन्यासी घर नहीं बनाता, ज्यादा से ज्यादा तंबू गाड़ता है। क्योंकि कल सुबह तो उखाड़ लेनी हैं खूंटियां; बहुत मजबूत बनाने की कोई जरूरत नहीं है।

तो जैसे ही यह ख्याल में आ गया कि संसार एक रास्ता है, पहुंचना है कहीं और, वैसे ही आसक्ति की जड़ें तुम्हारी रास्ते पर नहीं फैलतीं। तुम रास्ते पर होते हो, फिर भी रास्ते से सदा मुक्त होते हो। रास्ते का तुम उपयोग करते हो, लेकिन रास्ता तुम्हारा उपयोग नहीं कर पाता। तुम उस पर पैर रखते हो इसीलिए कि पैर उठा लोगे। तुम्हारे सारे व्यवहार में अंतर पड़ जाएगा। सारे व्यवहार में अंतर इसलिए पड़ जाएगा कि तुम्हारी नजर, जो दैनंदिन है उससे हट जाएगी। जो रोज का काम है उस पर तुम्हारी नजर नहीं रह जाएगी, उस पर तुम्हारा ध्यान नहीं रह जाएगा। होता है ठीक है, नहीं होता है तो ठीक है। नजर तो तुम्हारी उस परम उपलब्धि पर है जहां पहुंच जाना है, जो हो जाना है।

तो संन्यासी भी जीता है यहीं--इन्हीं रास्तों पर, इन्हीं मकानों में, इन्हीं लोगों के बीच, इन्हीं बाजारों में--यही सारी दुनिया है। लेकिन उसकी दृष्टि भिन्न है, उसकी दृष्टि बिल्कुल ही भिन्न है।

गृहस्थ का भाव मृत्यु को टाल देने का है सदा, भुला देने का है सदा। क्योंकि मृत्यु का स्मरण उसकी सारी व्यवस्था को नष्ट करता है। तो गृहस्थ मृत्यु को भूल कर जीता है। वह मैं दूसरा अर्थ करता हूंः गृहस्थ मृत्यु को भूल कर जीता है, विस्मरण करके जीता है। मान कर जीता है कि मृत्यु नहीं है। संन्यासी मृत्यु को अभिमुख रख कर जीता है, सामने रख कर जीता है। जानता है कि मृत्यु है। संन्यासी जो भी करता है उसमें मृत्यु का उसे सदा स्मरण है।

बड़ा फर्क पड़ जाता है। मृत्यु को भूल कर जीओगे, तो जीवन की जो क्षुद्रतम घटनाएं हैं वे बड़ी महत्वपूर्ण हो जाएंगी। मृत्यु को सामने रख कर जीओगे, तो जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएं भी क्षुद्रतम हो जाएंगी। समझो ऐसा--कि अभी तुम्हें कोई कह दे कि घंटे भर बाद तुम्हें मर जाना है। तुम्हारा सब व्यवहार बदल जाएगा। सोचा था कि इस आदमी पर मुकदमा करना है, झगड़ा करना है। गिर जाएगा ख्याल। सोचा था, इस आदमी ने गाली दी थी, इसको गाली का उत्तर देना है। गिर जाएगा ख्याल। बात खतम हो गई। जब तुम्हें ही घंटे भर बाद गिर जाना है तो अब गाली देने का कोई सवाल न रहा।

अगर तुम्हें पता चल जाए कि घंटे भर बाद तुम्हें मरना है, तो इस पता चलने के पहले जो-जो चीजें तुम्हारे चित्त में महत्वपूर्ण थीं, वे कोई भी महत्वपूर्ण न रह जाएंगी। और इस पता चलने के पहले जिन चीजों को तुम सदा के लिए टाल रखे थे कि कल कर लेंगे, वे सब एकदम से महत्वपूर्ण हो जाएंगी।

तो संन्यासी प्रतिपल मृत्यु को सामने रख कर जीता है। इसलिए मैं संन्यास को साहस कहता हूं और गृहस्थी को कायर कहता हूं। कायर से मेरा मतलब यह है कि वह जो जिंदगी का बहुत बड़ा सत्य है मृत्यु, वह उसकी तरफ पीठ करके जीता है, भूल कर जीता है। जैसे मृत्यु है ही नहीं, ऐसा मान कर जीता है। धोखा है यह। आत्मवंचना है।

संन्यासी जो है उसे सामने रख कर जीता है। मृत्यु उसके लिए एक सत्य है। और जो व्यक्ति मृत्यु को सामने रख कर जी लेता है और भय नहीं खाता मृत्यु का, पलायन नहीं करता, उसकी जिंदगी तो बदलती ही है--बाहर की जिंदगी तो बदलती ही है--मृत्यु को एनकाउंटर करने से, मृत्यु के आमने-सामने खड़े होने से उसकी भीतर की आत्मा भी बदलती और जगती है। इसलिए संन्यासी का हम पुराना नाम बदल देते हैं। घोषणा इस बात की है कि पुराना आदमी मर गया। तो वह तुम्हारी दृष्टि गई। उसके कपड़े बदल देते हैं कि उसका तादात्म्य टूट जाए, उसकी पुरानी जो आइडेंटिटी थी--सोचता था मैं यह हूं--वह समाप्त हो जाए। अब वह और तरह से जीने लगे, जिंदगी को और नये पहलू से देखने लगे। मौत को सम्मिलित कर ले अपनी व्यवस्था में।

अगर कोई व्यक्ति प्रतिपल यह जानता हुआ जीए कि अगले क्षण मृत्यु हो सकती है, तो न तो लोभी रह जाएगा, न क्रोधी रह जाएगा, न कामी रह जाएगा। मृत्यु अगर प्रकट होकर खड़ी हो जाए तुम्हारे पास, तुम्हारे क्रोध, लोभ, मोह, सब तत्काल विदा हो जाएंगे। ये सब होते हैं अगर तुम मृत्यु की तरफ पीठ करके खड़े हो तो। अगर मृत्यु सामने खड़ी है तो कैसा लोभ? मृत्यु तो सभी छीन लेगी, तो कौड़ी को पकड़ने का आग्रह क्या? मृत्यु तो सभी मिटा देगी, तो किसी ने गाली दे दी उससे क्या मिट जाएगा?

तो दूसरी बातः संन्यासी मृत्यु को उसकी जीवन-व्यवस्था में स्वीकार कर लेता है कि वह है। और तीसरी बातः जो दिखाई पड़ रहा है हमें, जो दृश्य है, वही सत्य नहीं है। इसे संन्यासी भीतर से खोजना शुरू करता है।

मैं तुम्हें दिखाई पड़ता हूं, लेकिन मेरा शरीर ही तुम्हें दिखाई पड़ता है, मैं तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता हूं। और जब मैं आंख बंद करता हूं तो मैं पाता हूं कि शरीर तो बिल्कुल नहीं है। शरीर से बहुत भिन्न और गहरा और अदृश्य मैं हूं। और जब मेरे भीतर अदृश्य छिपा है तो यह असंभव है कि तुम्हारे भीतर भी अदृश्य न छिपा हो। हर चीज की इनसाइड भी है। उसका एक बहिर-आवरण भी है, उसका एक अंतस्तल भी है। हर चीज का! पत्थर का भी अंतर-हृदय है, वृक्ष की भी अंतरात्मा है।

यह संन्यासी अपने ही भीतर खोज करके पाता है कि मैं भी बाहर से देखे जाने पर तो सिर्फ शरीर मालूम पड़ता हूं। मेरे भीतर जो छिपा है वह तो बाहर से किसी को भी पता नहीं चलता। मुझे भी लोग, जिनको मैं बाहर से देखता हूं--वस्तुएं, सारा जगत--वह रूप ही दिखाई पड़ता है। अपने भीतर के अरूप और निराकार के अनुभव से वह सब के भीतर अरूप और निराकार को धीरे-धीरे खोजना शुरू कर देता है।

तो गृहस्थ की समझ सदा ही अपने बाबत भी दूसरों के बहिर-आवरण को देख कर निर्मित होती है। तुम्हें मानता है शरीर, क्योंकि तुम शरीर दिखाई पड़ते हो, इसलिए मानता है अपने को भी शरीर। गृहस्थ की सारी समझ दूसरों से निर्मित होती है और दूसरों की समझ से ही वह अपने बाबत भी अनुमान लेता है।

संन्यासी की सारी समझ स्वनिर्मित होती है और स्वनिर्मित समझ से ही वह दूसरों के बाबत भी निर्णय लेता है। उसकी समस्त जीवन-दृष्टि अंतर-स्रोत से जगती है। और जितना ही गहरा वह अपने अंतर-स्रोत को पाता है, उतना ही उसे दूसरे के भीतर भी अंतर-स्रोत दिखाई पड़ने लगता है। फिर तो कण-कण में उसका उसे स्मरण रहने लगता है कि वह कण भी जैसा ऊपर से दिखाई पड़ रहा है वैसा ही नहीं है, भीतर उसके भी कोई छिपा है।

जो प्रकट दिखाई पड़ रहा है उसको ही सब मान लेना--सतह को, सर्फेस को--गृहस्थी का रुख है। नहीं, वह पर्याप्त नहीं है। भीतर और गहरे में भी कोई

मौजूद है, उसकी सतत खोज संन्यासी की यात्रा है। और यह जैसे-जैसे साफ होता जाता है वैसे-वैसे इस जगत में एक नये ही जगत का आविर्भाव होता है। पदार्थ खोने लगता है, परमात्मा प्रकट होने लगता है। जो हमें बाहर दिखाई पड़ता है वह सब कुछ नहीं मालूम होता, केवल जो अंतस में छिपा है उसकी ही बहिर-रूपरेखा रह जाती है। गृहस्थी सिर्फ रूपरेखाओं में जीता है, आउटलाइंस में। जैसे हम किसी आदमी का चित्र बनाते हैं तो उसकी रूपरेखा खींच देते हैं, ढांचा, स्केलटन। गृहस्थ का जो जीवन है, जो समझ है, वह स्केलटन की है। संन्यासी रूपरेखा में नहीं जीता, रूपरेखा में जो छिपा है उसमें प्रवेश करने लगता है।

हर जगह उसकी यही खोज है। एक फूल को भी हाथ में लेता है, तो बहुत जल्दी रूपरेखा को छोड़ देता है और अरूप में प्रवेश करने लगता है। उठता है, बैठता है, चलता है, जीता है, जहां भी, तो अरूप का और निराकार का सतत अन्वेषण है, संन्यास अरूप का सतत अन्वेषण है। गार्हस्थ्य, रूप की सतत आकांक्षा है। सतह पर जीना संसारी का ढंग है। गहरे में, और गहरे में उतर जाना, अतल में उतर जाना संन्यासी की डुबकी है।

और जीवन में जो भी परम आनंद के क्षण हैं, वे जितने हम गहरे उतरते हैं उतने ही मिलने शुरू हो जाते हैं। जीवन में जो दुख की लहरें हैं, वे जितने हम ऊपर होते हैं उतनी ही ज्यादा होती हैं। सत्य का कोई उदघाटन सतह पर नहीं है।

ये तीन बातें यदि ख्याल में आ जाएं तो ये संन्यासी की आत्मा हैं। और कोई भी जो इन तीन बातों को ध्यान में रख कर गति करता है वह संन्यस्त हो जाता है। बाकी संन्यासी के कपड़े बदल लेने हैं, नाम बदल देना है, ये घोषणाएं हैं। ये प्राथमिक रूप से बड़े काम की हैं, अंततः बिल्कुल बेकाम हैं। अंततः बिल्कुल बेकाम हैं, प्राथमिक रूप से बड़े उपयोग की हैं। मनुष्य का मन ऐसा है कि घोषित करते ही उसका संकल्प सघन हो जाता है और किसी भी विचार को कृत्य में लाते ही विचार की सुस्पष्टता हो जाती है। इतने समर्थ लोग बहुत कम हैं जो कि विचार को सीधा विचार में स्पष्ट कर पाएं।

तुम्हें प्रेम का विचार कभी स्पष्ट नहीं होगा जब तक कि तुम किसी को प्रेम न करो। प्रेम जब कृत्य बनेगा तभी तुम्हें स्पष्ट होगा। कृत्य बनते ही ठोस हो जाता है। विचार तो आकाश में उड़ते हुए बादलों की भांति हैं, उन बादलों में भी पानी छिपा है, लेकिन कृत्य बर्फ जमे हुए पानी की तरह हैं, उनमें भी पानी छिपा है। लेकिन आकाश के बादल का भरोसा नहीं किया जा सकता। अभी है, अभी नहीं हो जाएगा, बिखर जाएगा, बनेगा, बनता रहेगा। लेकिन ठोस हो जाता है पानी जब, बर्फ बन जाता है, तब भरोसा किया जा सकता है। तो विचार जब तुम्हारे कृत्य बनते हैं...

और कोई भी विचार, कृत्य बिना घोषणा के नहीं बनता। जैसे ही तुम घोषणा करते हो, तुम एक खूंटी गाड़ देते हो। जैसे ही तुम यह घोषणा करते हो कि मैं संन्यास में प्रवेश करता हूं। वैसे ही तुम कमिटेड हो गए। वैसे ही तुमने अपनी जीवन-धारा को एक दिशा और एक फोकस दे दिया। एक स्मरण तुम्हारे भीतर अब घना हो जाएगा।

इस स्मरण को बहुत स्पष्ट करने के लिए बाहरी उपकरणों की सहायता प्राथमिक रूप से जरूरी है। क्योंकि संन्यास की यात्रा पर निकला हुआ आदमी जब पहले चरणों में होता है तो बाहर ही होता है, अभी भीतर नहीं होता। सिर्फ उसका रुख बदलता है, होता सतह पर ही है अभी वह। अभी क्षण भर पहले गृहस्थ था, दृष्टि बदली है। अभी खड़ा तो उसी भूमि पर है--वहीं, रूप, आकार--अभी वहीं खड़ा है, सिर्फ दृष्टि बदली है, निराकार की तरफ उन्मुख हुआ है। इस निराकार की यात्रा में भी अभी उसको आकार के कुछ रूप के चरण उठाने पड़ेंगे। वे उसे उठा लेने चाहिए। वह जितने उठाता जाएगा उतना मार्ग सुनिश्चित, साफ, दिशा स्पष्ट, धुंधलापन कम होने लगेगा।

और एक-एक कदम तुम उठाते हो जब, छोटे-छोटे कदम भी, तो अगले कदम की सामर्थ्य तुममें पैदा होती है।

अब कोई मेरे पास आकर कहता है, वह कहता है, कपड़े बदलने से क्या होगा? उससे मैं कहता हूं कि तुम कपड़े भी बदलने की हिम्मत नहीं जुटा पाते, तो तुम

और क्या बदल पाओगे ? नहीं, वह कहता है कि मैं तो आत्मा ही बदल लूंगा। और कपड़े बदलने की उसकी हिम्मत नहीं है। और कहता है मैं आत्मा ही बदल लूंगा।

कपड़ा भी नहीं बदल पाता है एक आदमी तो आत्मा कैसे बदल पाएगा ? कपड़ा बदलना तो कोई बड़े साहस का काम ही नहीं है। आत्मा बदलना तो बड़ा दुस्साहस है। लेकिन आत्मा बदलने में वह धोखे में रह सकता है। कपड़ा बदलने में धोखे में नहीं रह पाएगा। कपड़ा बदलेगा, सबको दिखाई पड़ जाएगा। आत्मा बदलने की बात तो वह जिंदगी भर करता रह सकता है, किसी को कुछ दिखाई पड़ने वाला नहीं। दूसरे को तो दिखाई पड़ेगा नहीं, उसको खुद को भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

जब कोई आदमी आकर मुझसे कहता है, कपड़ा बदलने से क्या होगा ? तो मैं उससे कहता हूं कि तुमने अब तक आत्मा बदल क्यों नहीं ली ? अभी तक तुम रुके क्यों हो ? और अगर बदल ली है तो अब तुम कपड़े की चिंता में क्यों पड़े हो ?

नहीं, वह आदमी तरकीबें खोज रहा है। आदमी का मन बहुत चालाक है, वह हजार तरह की तरकीबें खोजता है। वह कहता है कि धुंधले में जीने दो मुझे। जहां कुछ चीजें ठोस नहीं होतीं, सख्त नहीं होतीं, जहां निर्णय नहीं लिए जाते, जहां कोई डिसीजन नहीं बनाए जाते, जहां सब अंधेरे में सरकता रहता है, वहीं मुझे जीने दो। वहां ठीक है।

छोटा सा कृत्य भी तुम्हें धुंधलके के बाहर ले आता है। तुमने नाम बदला है, तुमने कपड़ा बदला है, तुम जगत में बाहर आकर खड़े हो गए, तुम्हारे निर्णय की घोषणा हो गई, चारों तरफ लोग देखने लगे कि तुम संन्यासी हो गए हो। अब तुम्हें कठिनाई शुरू हुई, अब तुम उसी तरह न जी सकोगे जैसे तुम कल जीते थे। अब अगर तुम उसी तरह जीते हो तो तुम्हारे भीतर गिल्ट और अपराध पैदा होगा। अगर तुम अब उसी तरह जीते हो, तुम्हारे अंतःकरण में चोट आनी शुरू हो जाएगी। तुम्हारा खुद ही मन कहेगा कि क्या करते हो ? किसने तुमसे कहा था कि तुम संन्यास ले लो ?

तो जैसे ही तुम छोटा सा भी कदम उठाते हो वैसे ही तुम्हारा पिछली दुनिया से संबंध क्षीण होता है और नई दुनिया से संबंध जुड़ता है। एक छोटा सा कदम भी नई दुनिया से संबंध जुड़ा देता है।

तो संन्यास की बाकी तो सारी व्यवस्था सिर्फ कमजोर आदमी के लिए है। और आदमी कमजोर है। और यह भ्रम हमारे मन में अनेक बार होता है कि शायद हम अपवाद होंगे। इस दुनिया में प्रत्येक आदमी ऐसा सोचता है कि वह शायद अपवाद है, एक्सेप्शन है। इस भ्रांति में कभी मत पड़ना। यह बड़ी गहरी भ्रांति है। हर एक ऐसे ही सोचता है कि ठीक है, दूसरे को होगी कपड़े की जरूरत, दूसरे को होगी माला की जरूरत, दूसरे को होगी नाम की जरूरत, मुझको नहीं है।

लेकिन मजा यह है कि वह कभी नहीं देखता है कि दूसरे को जितनी क्रोध की जरूरत है उतनी ही मुझे है। दूसरे को जितनी काम की जरूरत है उतनी ही मुझे है। दूसरे को जितनी लोभ की जरूरत है उतनी ही मुझे है। और सब मामलों में मैं बिल्कुल दूसरा हूं, सिर्फ इस मामले में दूसरों को होगी कपड़े की जरूरत और मुझे नहीं है !

जब भी तुम्हारे मन में कभी यह ख्याल उठे कि मैं अपवाद हूं, तब तुम देखना कि कहां हो अपवाद ? जब कोई एक पत्थर तुम्हारी तरफ फेंकता है तो तुम्हारे भीतर वही होता है जो दूसरे के भीतर होता है। फिर अपवाद तुम कैसे हो ? जब कोई एक गाली दे जाता है तो तुम्हारी रात की नींद भी विचलित हो जाती है, वैसे ही जैसे किसी और की हो जाती है। जब कहीं सम्मान मिलता है तो तुम भी वैसे ही फूल जाते हो जैसा कोई दूसरा फूलता है। अपवाद तुम कहां हो ?

अगर इन सब में तुम पाओ कि तुम अपवाद हो, तो फिर मैं कहूंगा कि तुम्हें संन्यास के बाहर की किसी रूपरेखा की जरूरत नहीं है। लेकिन ऐसा आदमी रुकता ही नहीं, वह कभी का संन्यासी हो चुका है। हो ही चुका है, वह रुका हुआ भी नहीं है। और बड़े मजे की बात है कि ऐसा आदमी आकर कभी न कहेगा कि कपड़ा बदलने से क्या होगा ? ऐसा आदमी कभी न कहेगा। क्योंकि वह जानता है, समझता है। जो भी आदमी आकर कहता है, कपड़ा बदलने से क्या होगा ? वह आदमी कपड़ा बदलने से डरता है, भयभीत है।

अपना भय भी हम प्रकट नहीं करना चाहते। हम यह भी नहीं कहना चाहते कि हम भयभीत हैं। कपड़ा बदलने में डर लगता है, यह भी हम नहीं कहना चाहते। हम अपने

भय को भी सिद्धांत बनाएंगे। हम कहेंगे कि नहीं, कपड़ा हम इसलिए नहीं बदलते क्योंकि कपड़ा बदलने से कुछ होने वाला नहीं है।

आदमी के मन के जो बड़े से बड़े धोखे हैं वे उसके रेशनलाइजेशन से हैं, हर चीज को न्यायसंगत बनाने की चेष्टा से चलते हैं। वह कहेगा, नहीं; मुझे तो कोई भय नहीं है किसी का। हालांकि रास्ते पर दो आदमी हंस दें, तो फिर वह दिन भर चैन से नहीं रह पाता। वह कहेगा, मुझे भय नहीं है किसी का। लेकिन चार आदमी रास्ते पर घूर कर देख लें, तो उनकी आंख उसकी छाती तक चुभ जाती हैं। और कहता है, भय नहीं है मुझे किसी का। पर इसे छुपाएगा। कहेगा कि होगा क्या?

संन्यास की बाकी सारी व्यवस्था आदमी की कमजोरी को देख कर है। और आदमी कमजोर है। और जो आदमी कमजोर नहीं है वह संन्यासी है ही। उसके लिए शायद किसी व्यवस्था की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन उसे हम बाहर छोड़ देते हैं। वह नियम नहीं है। वह तुम्हारे काम का भी नहीं है। इतना ख्याल में हो तो ठीक होगा।

प्रश्नः संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिए कोई...

संकल्प को बढ़ाना हो तो एक ही रास्ता है कि संकल्प करना शुरू करो। कुछ चीजें ऐसी हैं, जैसे कि किसी को दौड़ने की ताकत बढ़ानी है तो क्या करे? दौड़े। जितना दौड़ेगा उतनी ताकत बढ़ेगी। जितनी ताकत बढ़ेगी उतना दौड़ेगा। बस ताकत बढ़ती चली जाएगी। तुम्हें जो भी करना है वह करना शुरू करो। अगर तुम्हें संकल्प बड़ा करना है तो संकल्प करने की कोशिश करो। छोटे-छोटे संकल्प करो और उन्हें पूरा करो। और इतना ध्यान रखना कि जो संकल्प करो, फिर उसे पूरा करना। नहीं तो संकल्प बढ़ेगा नहीं, और घट जाएगा जितना था। इसको ख्याल में रखना।

जैसे तुमने तय किया कि आज खाना नहीं खाऊंगा, तो फिर नहीं ही खाना। नहीं तो तुम और पीछे पहुंच जाओगे। क्योंकि अगर तुमने खा लिया तो तुमने संकल्पहीनता का अभ्यास किया। अभ्यास तो हुआ ही। तो उससे तो बेहतर है तुम संकल्प ही मत करना, उससे तो तुम चुपचाप खाते रहना। लेकिन अगर तय करो तो फिर उसे निभाना, फिर कितनी ही कठिनाई हो; क्योंकि नहीं तो दो में से कुछ एक घटित होगा।

अगर तुमने भोजन कर लिया संकल्प लेकर तो तुम और संकल्पहीन हो गए, जितने तुम संकल्प लेने के पहले थे उससे भी पीछे गए। अब तो तुम्हारा आत्मविश्वास और कम हो जाएगा। अब तो तुम जानोगे कि मेरी तो कोई ताकत ही नहीं है, मैं तो मर गया। इतना सा छोटा सा काम मुझसे नहीं हो सका, मैं किसी दीन का नहीं। इससे तो पहले ही बेहतर थे कम से कम इतनी दीनता तो न थी। इतना तो ख्याल था कि चाहूंगा तो कर लूंगा। अब वह भी न रहा।

संकल्प करो, तो पूरा करना। छोटा करना, लेकिन पूरा करना। कोई बहुत बड़े संकल्प लो, ऐसा जरूरी नहीं है। दीवाल की तरफ मुंह करके तुम खड़े हो गए हो, मत देखना एक घंटे दीवाल से हट कर। हालांकि पीछे कोई अप्सराएं नहीं नाचने आ जाएंगी और न पीछे कोई स्वर्ण की वर्षा होगी, लेकिन घंटे भर दीवाल की तरफ देखना भी मुश्किल हो जाएगा। वह मन कहेगा, देखो पीछे। हालांकि इतने दिन से पीछे देख रहे थे, वहां कोई है नहीं। मन कहेगा कि पीछे देखो, पता नहीं क्या हुआ जा रहा है! कुछ नहीं हुआ जा रहा है। तो फिर एक घंटे दीवाल की तरफ देखना तो दीवाल की तरफ ही देखना। फिर सच में ही पीछे कुछ हो जाए तो भी मत देखना।

घंटे भर के बाद तुम सबल होकर बाहर आओगे। तुम्हारा संकल्प बढ़ चुका होगा, तुम्हारा आत्मविश्वास बढ़ा होगा। तुम जानोगे कि तुम कुछ कहो तो कुछ कर सकते हो। तुम भरोसे के योग्य हो। तुम अपनी ही आंखों में ऊपर उठ गए होओगे। दूसरे की आंख का सवाल नहीं है। तुम्हारी ही आंख में तुम्हारे ऊपर उठने का सवाल है।

हम उलटे काम में लगे रहते हैं, हम दूसरे की आंख में ऊपर उठने में लगे रहते हैं। और खुद की आंख में हमारी कोई इज्जत नहीं होती। और ध्यान रखना, जिसकी अपनी ही आंखों में कोई इज्जत नहीं है, इस जगत भर की इज्जत मिल जाए तो भी किसी काम की नहीं है। हम अपनी ही आंखों में दीन होते हैं। और दीन इसलिए होते हैं कि हमने कभी अपनी आंख में श्रेष्ठतर, ऊर्ध्वगामी कोई संकल्प की

यात्रा नहीं की है। और कभी करने की कोशिश की है तो सदा पराजित हुए हैं। तय किया है क्रोध नहीं करेंगे, क्रोध कर लिया है। तय किया है यह नहीं करेंगे, कर लिया है। तय किया है यह करेंगे, वह नहीं किया है। बस पिघलते चले गए, टूटते चले गए।

जब भी कोई मुझसे पूछता है--संकल्प के लिए क्या करें? तो उसका मन, उसका ख्याल ऐसा होता है कि संकल्प बढ़ाने के लिए संकल्प के अलावा कुछ करना पड़ेगा।

नहीं। समझे न? संकल्प बढ़ाने के लिए संकल्प ही करना पड़ेगा। प्रेम बढ़ाने के लिए प्रेम ही करना पड़ेगा। ध्यान बढ़ाने के लिए ध्यान ही करना पड़ेगा। इसमें उपाय नहीं है, कोई दूसरी चीज से सहायता मिलने वाली नहीं है तुम्हें। वही करना पड़ेगा जो तुम चाहते हो। उसको करो। यानी जब आदमी को साइकिल चलानी सीखनी है, क्या करना पड़ेगा? साइकिल चलानी पड़ेगी, गिरना पड़ेगा, उठना पड़ेगा, चलानी पड़ेगी। चलाने से ही चलाना आएगा। कोई और अतिरिक्त उपाय नहीं है। जीवन में प्रत्येक चीज को करो तो वह विकसित होती है, न करो तो वह अविकसित रह जाती है।

और ध्यान रखना, जब तुम नहीं कर रहे हो तब भी कुछ विकसित होता है, विपरीत विकसित होता है। वह धीरे-धीरे तुम्हारे ऊपर बैठता चला जाता है। तुम्हारी जिंदगी भर का अनुभव कहता है कि संकल्प तो कभी किया नहीं। यह भी तुम्हारा संस्कार बन गया। या कभी छोटा-मोटा किया तो पूरा हुआ नहीं।

तो बहुत बड़ा संकल्प मत ले लेना एकदम से, जिसको तुम पहले से ही जानते हो ... और अक्सर यह होता है, जो लोग भी संकल्प की यात्रा पर निकलते हैं, अपनी सीमा के बाहर संकल्प ले लेते हैं। तुम्हारा मन ही तुम्हें समझाता है कि हां, ले लो। और लेकर फिर तुम फंसते हो, फिर गिरता है। फिर तुम्हारा मन ही कहता है कि अब छोड़ो, कोई किसी की गुलामी थोड़े ही है, अपना ही लिए हुआ है, अब छोड़ो। और मन ऐसा क्यों करता है? मन ऐसा इसलिए करता है कि जितना तुम्हारा संकल्प बड़ा होगा, मन तुम्हारा उतना ही छोटा हो जाएगा। जिस दिन संकल्प पूर्ण होगा, मन मर जाएगा, मन बच नहीं सकता। मन और संकल्प विरोधी चीजें हैं। मन तुम्हारी कमजोरी का नाम है और संकल्प तुम्हारी आत्मा का नाम है। मन तुम्हारी बीमारी है, संकल्प तुम्हारा स्वास्थ्य है।

इसलिए मन तो तुम्हें दिक्कत में डालता ही रहेगा। वह तो कहेगा कि लो बड़ा। जब लोगे तो कहेगा, लो बड़ा। बड़ा दिलवाएगा इसलिए कि कल गिरा सके। और जब तुम ले लोगे तो उसी क्षण से, लिया नहीं तुमने कि वह कहेगा, अब तोड़ो, यह अपने से नहीं सम्हलने वाला, यह सध नहीं सकता। यह दोहरा खेल है।

तो मन के दोहरे खेल सब समझ लेना। पहले तो लेते वक्त अपनी सीमा के भीतर लेना, जिसे कि तुम पूरा कर ही सको। कोई जरूरत नहीं है कि तुम घंटे भर दीवाल की तरफ देख कर खड़े हो, एक मिनट खड़े हो। एक मिनट भी थोड़ा नहीं है। पर तुम्हारा मन कहेगा, अरे इसमें क्या रखा हुआ है? तुम्हारा मन कहेगा, इसमें क्या रखा हुआ है? एक मिनट तो कोई भी खड़ा हो सकता है! लेते हो तो घंटे भर का लो! और तुम्हारा अहंकार कहेगा कि बात तो ठीक है, एक मिनट? किसी से कहने भी जाएंगे तो हंसेगा कि एक मिनट दीवाल की तरफ देखते हुए खड़े रहे, ऐसा संकल्प हमने पूरा किया। तुम्हारा अहंकार भी कहेगा, अगर लेते हो तो घंटे भर का लो। लिया तुमने कि लेते ही से उलटा शुरू हो जाएगा मन का कहना कि क्या कर रहे हो? क्या फायदा दीवाल की तरफ देखने से?

इस दोहरे जाल को ख्याल में रख कर संकल्प करना शुरू करो। जैसे-जैसे संकल्प सफल होगा, वैसे-वैसे तुम बढ़ते जाओगे। छोटे लेना, सीमा के भीतर लेना, जिन्हें तुम पूरा कर सको। जितना तुम पूरा करोगे उतनी तुम्हारी सीमा बड़ी होगी। फिर उसके भीतर लेना, फिर सीमा और बड़ी होगी। एक दिन तुम पाओगे कि तुम कोई भी संकल्प पूरा कर सकते हो। और जिस दिन कोई भी संकल्प पूरा कर सकते हो उसी दिन तुम्हारा मन गया। उसी दिन सही अर्थों में तुम आदमी हुए, उसके पहले तुम सिर्फ कमजोरियों का एक जोड़ थे।

प्रश्नः मैं आपसे यह पूछता हूं कि संन्यासी जो है वह मृत्यु को सामने रख कर जीता है और योग कहो कि पुरातंत्रीका, कि जो लोग मृत्यु को देखता है, मृत्यु के पार देखता है वह बूढ़ा होता चला जाता है...

समझ लो, उसको भी पढ़ना, इसको भी समझना। वह बिल्कुल दूसरे संदर्भ में कही गई बात है, यह बिल्कुल दूसरे संदर्भ में। दोनों को समझना, ख्याल में तुम्हें आ जाएगा।

प्रश्नः भाई अभी हमारा साक्षीभाव से संबंध हुआ नहीं, तो कपड़े पहनने से कई बार ऐसा लगता है कि हम सुपीरियर हैं दूसरों से।

ठीक है।

प्रश्नः तो वह ईगो स्ट्रांग होती है उससे।

इसको भी देखना।

प्रश्नः मतलब साक्षी का संबंध नहीं हुआ न!

नहीं तो वह कब होगा? कैसे होगा? अपने आप तो नहीं हो जाएगा, कुछ करने से होगा। समझे न? यानी अगर तुम सोचते हो कि जब साक्षीभाव बिल्कुल थिर हो जाएगा तब हम संन्यासी होंगे। तब तो संन्यासी होने की जरूरत न रह जाएगी। और अगर तुम सोचते हो कि अभी संन्यासी होंगे तो साक्षीभाव तो फिर नहीं हुआ। तब तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगा। कहीं से शुरू करना पड़ेगा। और साक्षीभाव तुम्हें पूर्ण आज नहीं मिल सकता। इसलिए अपूर्ण साक्षीभाव में ही यात्रा शुरू करनी पड़ेगी। अब जब तुम्हारा अहंकार उठ कर कहने लगे कि मैं संन्यासी हूं, तब इसके भी साक्षी बनने की कोशिश करना। साक्षी बनोगे तो यह गिर जाएगा, यह गिर जाएगा।

दो-तीन बातें मुझे तुमसे कहनी हैं, वे मैं तुमसे कह दूं।

एक तो मुझे तुमसे यह कहना है कि तुम्हें जो भी मिले--शांति का अनुभव हो, आनंद की प्रतीति हो, रस बहे--तो आदमी का मन सदा ऐसा है कि जो उसे मिल जाए उसे वह भूल जाता है और जो न मिले उसे याद रखता है, यह गृहस्थी का लक्षण है। जो तुम्हें मिल जाए उसे याद रखना और जो तुम्हें न मिले उसको भूल जाना, यह संन्यासी का लक्षण है। क्योंकि तभी तुम परमात्मा को धन्यवाद दे पाओगे, अन्यथा तुम शिकायत ही करते चले जाओगे। तुम्हें रत्ती भर मिले तो तुम रत्ती भर के लिए परमात्मा को धन्यवाद देना और तुम्हें पहाड़ भर न मिले तो भी शिकायत मत करना। क्योंकि शिकायत करने वाले के पास जो है वह भी छीन लिया जाता है और धन्यवाद देने वाले को जो नहीं है वह भी दे दिया जाता है। शिकायत छोड़ देना। संन्यासी का लक्षण शिकायत नहीं है। शिकायत बहुत वासनाग्रस्त वृत्ति है।

तो तुम्हें जो मिले उस पर बहुत कनसनट्रेट करना। जो तुम्हें मिल जाए--थोड़ा सा सही, एक रत्ती भर सही, एक कण भर मिले तुम्हें आनंद का--उसे ध्यान में रखना। उसे उछालते रहना अपने मन में। उसी को बढ़ाना है न, तो उसे उछालना, उसका स्मरण करना; उसे बार-बार उसमें रस लेना, प्रभु को धन्यवाद देना कि मेरी इतनी भी सामर्थ्य कहां थी! मेरी इतनी भी पात्रता कहां थी! जो मुझे मिला है वह भी मुझे न मिलता, तो मैं कहीं तो किसी अदालत में तो खड़े होकर नहीं कह सकता था कि मुझे यह क्यों नहीं मिला? तो जो मुझे मिला है वह अनुकंपा है, उसको धन्यवाद देना।

और तुम हैरान होओगे, जितना तुम उस पाए हुए को स्मरण करोगे, रस लोगे, उतना ही वह बढ़ेगा, उतना ही बढ़ता जाएगा।

फिर तुम्हें जो मिल जाए उसकी खबर दूसरे को भी करना। क्योंकि जैसा मैंने कहा, तुम्हारे भीतर भाव सब धुंधले होते हैं, जैसे ही तुम उन्हें कहीं प्रकट करते हो किसी भी रूप में, वे स्पष्ट होते हैं। अगर तुम्हें आनंद की थोड़ी सी झलक मिल रही है तो उसकी खबर करना जाकर लोगों को कि आनंद मिल रहा है। उस आनंद को बताने की कोशिश करना। दूसरे को बताते वक्त वह तुम्हें भी प्रकट और स्पष्ट होगा, अन्यथा तुम्हें भी प्रकट और स्पष्ट नहीं होगा। इस जीवन में हमारे जो गहरे अनुभव हैं वे दूसरे से कहते वक्त ही

हमें पूरी तरह साफ होते हैं। तो तुमसे मैं कहता हूं कि तुम जाना और कहना लोगों को, तुम्हें जो मिले उसको बताना।

अपनी दीनता तो गृहस्थ बताते फिरते हैं। तुमने देखा ही होगा कि जब भी गृहस्थ किसी को मिलेगा तो अपने दुख का रोना रोएगा, अपनी कठिनाइयां गिनाएगा, अपनी मुसीबतें, अपना दुर्भाग्य, अपनी बदकिस्मती, सब। संन्यासी मिले तो क्या करे? यही! यह नहीं हो सकता। उसे कुछ सौभाग्य--जो भी, कण भर सौभाग्य मिला हो--उसकी खबर देनी चाहिए। संन्यासी के मुंह से दुख की बात बंद हो जानी चाहिए।

ऐसा नहीं है कि दुख अभी बंद हो गया है। दुख है। लेकिन संन्यास लेते ही दुख की बात बंद हो जानी चाहिए। बात से तो मिटता नहीं। बल्कि जैसा मैंने कहा कि जब तुम सुख, आनंद की खबर किसी को दोगे तो तुम्हारे सामने तुम्हारा आनंद प्रगाढ़ होकर स्पष्ट होता है, वैसे ही दुख की खबर देते वक्त तुम्हारा दुख भी प्रगाढ़ होकर स्पष्ट होता है। और जितना होता है उससे ज्यादा मालूम पड़ता है और आनंद भी जितना होता है उससे ज्यादा मालूम पड़ता है।

तुमने देखा ही होगा कि दुखी आदमी अपने दुख की खबर कहने में कैसा रस लेता है। अगर तुम उसके दुख की खबर न सुनो तो वह बहुत दुखी होता है। अपने दुख की खबर सुनाता फिरता है। सुबह से उठा कि हर आदमी अपने दुख की खबर सुनाता फिरता है।

दुख हैं। तुम्हारी जिंदगी के भी दुख आज एकदम समाप्त नहीं हो गए हैं। लेकिन जिंदगी में सुख भी है, रसपूर्ण भी है कुछ। गृहस्थ दुख की खबरें फैलाता फिरता है, तुम मत फैलाना। तुम्हारी जिंदगी में जो भी थोड़ा सा रस हो, उसको ले जाना और बांटना।

और ध्यान रहे, जब तुम किसी से दुख की बात करते हो तब तुम दूसरे के दुख को भी उभारते हो, उसका दुख भी उसके चित्त में ऊपर आ जाता है। जब तुम सुख की खबर ले जाते हो... जीसस कहते थेः सुसमाचार, सुख की खबर, दि गुड न्यूज... तब उसके भीतर से भी उसका सुख ऊपर आता है। जब तुम अपने आनंद की एक किरण की बात करते हो तब उसे भी तुम एक मौका देते हो कि वह भी खोजे कि उसके जीवन में कोई आनंद की किरण है। और जब तुम्हें वह आनंद से भरा हुआ, प्रभु को धन्यवाद देता हुआ देखता है तो उसके मन में भी प्रभु को धन्यवाद देने की संभावना विकसित होती है।

और संन्यासी की जो जीवनचर्या है वह ऐसी होनी चाहिए कि वह सब जगह आनंद को फैलाता रहे। उठे, बैठे, सोए, जागे--आनंद फैलाता रहे। आनंद फैला कर ही वह परमात्मा के प्रति अनुग्रह का भाव पैदा कर पाएगा।

तुम दुनिया को समझा नहीं सकते हो कि परमात्मा के प्रति अनुगृहीत हो। क्योंकि जो आनंदित नहीं है वह अनुगृहीत कैसे हो सकता है? ग्रेटिट्यूड आएगा कैसे? ग्रेटिट्यूड कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि थोप दी जाए। वह आनंद का फल है। तुम आनंद की खबर ले जाना। तुम्हारे भीतर चाहे आंसू ही क्यों न भरे हों, लेकिन खोजना कि एकाध मुस्कान जरूर होगी। ऐसा कोई हृदय इस जगत में नहीं है जिसके भीतर मुस्कान न हो। जीना मुश्किल है अन्यथा। मर ही चुके होते तुम कभी के।

अमेरिका में एक विचारक था जॉन डिवी। वह कहता था कि सत्य की खोज ऐसी है कि कभी पूरी नहीं होती। एक शिखर दिखाई पड़ता है पर्वत का। तुम चढ़ते हो, बड़ा श्रम करते हो, पहुंच जाते हो शिखर पर, आनंद से भर जाते हो। लेकिन तभी शिखर पर पहुंचते ही दूसरा शिखर सामने दिखाई पड़ने लगता है--और ऊंचा। उसे भी तुम चढ़ते हो, श्रम करते हो, पहुंचते हो दूसरे शिखर पर--और पाते हो कि आगे और शिखर खड़ा है। बस ऐसे ही शिखर पर शिखर उदघाटित होते चले जाते हैं।

तो जॉन डिवी के पास कोई मिलने आया था, उस आदमी ने कहा कि इसका क्या मतलब? अगर यह पक्का है कि हर शिखर के बाद और शिखर हैं तो बेकार मेहनत क्यों करनी? और जब ऐसा बहुत बार पता चलेगा तो आदमी थक नहीं जाएगा? तो जॉन डिवी से उसने कहा कि अगर आपके सामने ऐसे शिखर पर शिखर खुलते चले गए, हजार बार अनुभव कर लिया कि शिखर के बाद शिखर हैं, फिर क्या करोगे?

तो जॉन डिवी ने कहा कि जिस दिन ऐसा ख्याल उठेगा, जिस दिन ऐसा ख्याल उठेगा और जिस आदमी को ऐसा ख्याल उठेगा, वह वही आदमी है जिसने हर शिखर पर

चढ़ने के आनंद का ख्याल नहीं रखा, हर शिखर पर चढ़ने की कठिनाई का ही हिसाब रखा।

फर्क पड़ेगा न! हर शिखर पर चढ़ने की कठिनाई का हिसाब रखा। लेकिन अगर हर शिखर पर चढ़ने के आनंद का ख्याल रखा तो हर नया शिखर और बड़ी उत्तेजना है, और बड़ी चुनौती है, और बड़ा आनंद सामने फिर खड़ा है--इसको भी चढ़ेंगे!

उस आदमी ने पूछा, लेकिन कोई क्षण तो ऐसा आ सकता है कि थक जाएं।

उसने कहा, जिस क्षण थक गए, उस क्षण समझना चाहिए कि मर गए। तभी तक जीवित हैं। दुख का जो हिसाब रखता है वह मर जाता है मरने के बहुत पहले। आनंद का जो हिसाब रखता है वह मृत्यु के बाद भी जीए चला जाता है।

तो आनंद का हिसाब रखना। संन्यासी का मतलब है कि वह अपनी जिंदगी के हिसाब की किताब में आनंद की ही गणना करता है। और दुख अगर है तो सीढ़ियों की भांति है, उसको हिसाब में रखने की जरूरत नहीं है। और इस आनंद की खबर तुम देना शुरू करो, इसे तुम अपने में छिपा कर मत रखना। जब तुम इसकी खबर दोगे तो तुम्हारे भीतर वह प्रकट होगा, खिलेगा, फूल बनेगा। तुम्हारे चेहरे, तुम्हारी आंखों, तुम्हारे हाथों, तुम्हारे शरीर से उसकी सुगंध निकलने लगेगी।

ध्यान रखो, जब तुम दुख की किसी से बात करते हो तब तुमने कभी ख्याल किया कि तुम्हारा शरीर भी सिकुड़ता है, तुम्हारे प्राण भी कुम्हला जाते हैं, तुम्हारी आंखें भी दीन हो जाती हैं, तुम्हारे भीतर सब बंद हो जाता है। दुख की खबर देकर तुम दुख निर्मित कर रहे हो--खुद के लिए भी और दूसरे के लिए भी।

तो मैं तुमसे कहता हूं कि तुम किसी को दुख दोगे--इतना भी, दुख कहने का भी--तो हिंसा है। दुख की बात ही बंद कर देना। सुख की खबर ले जाओ; आनंद की खबर दो। और तुम्हारा आनंद बढ़ेगा। और तुम्हें आनंदित देख कर दूसरा आनंदित होगा। सब चीजें, दुख या सुख, इनफेक्शस हैं। उनका इनफेक्शन लगता है। जब तुम आनंद से भरते हो तो दूसरे के हृदय में भी आनंद की तरंग लहर लेने लगती है। जब तुम दुख से भरते हो तो दूसरा भी दुख से भर जाता है।

आनंद की खबर ले जाना। कहना। कठिन पाओगे कहना, सभी के पास शब्द नहीं होते। जरूरी भी नहीं है कि हों। शब्द अकेला माध्यम भी नहीं है कहने का। नाच कर भी कह सकते हो, हंस कर भी कह सकते हो, गीत गाकर भी कह सकते हो, तंबूरा बजा कर भी कह सकते हो। जो उपकरण बने तुम्हारे पास, उससे अपनी खबर देना। जल्दी ही तुम्हें दूर-दूर जाना पड़ेगा, जल्दी ही तुम्हें गांव-गांव भेजूंगा।

नहीं, जरूरी नहीं है कि तुम बहुत बोल सकोगे। पर आवश्यक भी नहीं है। तुम चार शब्द बोलना, चुप होकर बैठ जाना। चार शब्द बोलना और नाच कर कह देना। कठिन पाओ कि नहीं कह सकता हूं, शब्द नहीं मिलते हैं, तो नाचना। और लोगों से कहना कि जो मैं कहना चाहता हूं वह कहते तो नहीं बनता मुझसे, तो मैं नाच कर कह देता हूं, हंस कर कह देता हूं, गीत गाकर कह देता हूं, जो मुझसे बनता है वह मैं करता हूं। पर तुम्हारे आनंद की खबर तुम किसी न किसी मार्ग से देना शुरू करो। सड़क पर चलो तो तुम्हारे चारों तरफ तुम्हारे आनंद की छाया हो। तभी हम इस संन्यास के नव-आंदोलन को व्यापक कर सकेंगे--जगतव्यापी!

ऐसी स्थिति नहीं आनी चाहिए कि कोई तुमसे पूछे कि संन्यासी क्यों हो गए? तुम्हारा आनंद इतना अभिभूत कर ले उसे कि वह जाने कि क्यों हो गए, इसको पूछने की जरूरत नहीं आनी चाहिए। जब तुमसे कोई पूछे कि संन्यासी क्यों हो गए? तो जरूरी नहीं है कि तुम बहुत गंभीर होकर उसे समझाने बैठ जाओ, कि तुम बहुत उदास और परेशान हो जाओ। तुम हंस सकते हो, नाच सकते हो, उसको गले लगा सकते हो, आगे बढ़ जा सकते हो। उसे खबर तुम दे सकते हो कि कुछ हो गया है। वह खबर ही उसको पकड़ेगी।

इस जगत में कोई चीजें, किसी भी चीज के लिए...

प्रमाण सिर्फ तार्किक ही नहीं होते। तार्किक प्रमाण कमजोर से कमजोर प्रमाण है। उसकी कोई, तार्किक प्रमाण की कोई बड़ी शक्ति नहीं है। अस्तित्वगत प्रमाण होना चाहिए, एक्झिस्टेंशियल होना चाहिए। तुम्हें देख कर उसे लगे कि हमसे गलती हो रही है कि हम संन्यासी नहीं हो गए। वह तुमसे पूछे क्यों कि तुम संन्यासी क्यों हो गए? तुम्हें देख कर उसे खबर आनी चाहिए कि मैं अब तक संन्यासी क्यों नहीं हुआ? तब तुम समझना कि तुम ठीक, ठीक

व्यवहार कर रहे हो जैसा संन्यासी को जिस आनंद में होना चाहिए। जो तुम्हें देखे उसके मन में पीड़ा जग जानी चाहिए कि मैं संन्यासी क्यों नहीं हो गया हूं?

यह हो सकेगा, एक दफे तुम्हारे ख्याल में ले लेने की बात है। और तुम्हें अपने दुख की नासमझियों को दूर हटा देने की जरूरत है और अपने आनंद की किरण को बाहर लाने की जरूरत है। तो दोनों तुम्हारे भीतर हैं। जो है उसके लिए आनंदित होओ, मग्न होओ, नाचो। और ध्यान रहे, जैसे ही तुम आनंदित होओगे, आनंद रास्ता खोज लेता है अपने को प्रकट करने के लिए, जैसे दुख खोज लेता है।

तुमने कभी ख्याल किया कि दुख के खोजने के लिए तुम्हें कोई अभ्यास नहीं करना पड़ता, हर आदमी अपना दुख प्रकट कर देता है। कोई बहुत बड़े शास्त्र के ज्ञान की जरूरत नहीं होती, हर आदमी दुख प्रकट कर देता है। बस दुख होता है तो प्रकट कर देता है। लेकिन लोग कहते हैं, आनंद को कैसे प्रकट करें?

उसका स्मरण लो, उसका होना उसका प्रकटीकरण बन जाएगा। होना चाहिए उसकी स्मृति, वह प्रकट होने लगेगी।

संन्यासी होते ही तुमने लेखा-जोखा बदल दिया। अब तुम दुख का हिसाब नहीं रखते, अब तुम सुख का हिसाब रखते हो। अब तुम उसको बढ़ाए चले जाते हो। इसको प्रकट करो--तुम्हारे उठने-बैठने, तुम्हारे सारे व्यक्तित्व से।

मैं बिल्कुल एक नये तरह के संन्यासी की आशा रखता हूं। पुराना संन्यासी जराजीर्ण हो गया है। उदास, गंभीर, भारी, पत्थर रखे हैं उसके सिर पर पांडित्य के। वह सब फेंक देना है। तुम्हें मैं हलका-फुलका, नाचता हुआ, आनंदमग्न देखना चाहता हूं। जैसा तुमसे बने! उठा लेना एकतारा और चले जाना किसी गांव में। बजाना एकतारा, नाचना, गांव को नचाना, विदा हो जाना। इस आनंद की खबर ले जाना।

दुनिया बहुत उदास है, बहुत दुखी है, बहुत पीड़ित है--अपने ही हाथों। क्योंकि हिसाब गलत करती है, दुख को जोड़ती चली जाती है। तुम्हें इस पूरे हिसाब की व्यवस्था को तोड़ डालना है। कुछ बोल सके बोलना, कुछ कहते बन सके कहना। कहने के संबंध में, बोलने के संबंध में जल्दी ही तुम्हें मुझे भेजना ही है।

एक बात और तुम्हें मैं कह दूं। एक तो कहने की वैज्ञानिक पद्धति होती है। वह प्रशिक्षण की बात है, सभी के लिए संभव नहीं है, जरूरी भी नहीं है। एक बोलने की परमहंस पद्धति होती है। उसके लिए प्रशिक्षण की कोई भी जरूरत नहीं है। जैसे रामकृष्ण! रामकृष्ण तो दूसरी बंगला तक पढ़े थे; कुछ जानते नहीं थे; कुछ पढ़े-लिखे नहीं थे बहुत। लेकिन उनकी अपनी पद्धति थी। वह पद्धति क्या थी?

कुछ बोलने लगते। फिर लगता कि नहीं अब बोला जाता है, चुप हो जाते। फिर लगता चुप्पी से भी समझ में नहीं आता, खड़े होकर नाचने लगते। और जो बोलने से नहीं समझ में आता वह उनके नाचने से समझ में आ जाता। और उनका बोलना कोई जरूरी नहीं था कि कोई मानता, लेकिन उनके नाचने के साथ बहुत लोग सम्मिलित हो जाते और नाचने लगते। और रामकृष्ण का पूरा व्यक्तित्व कहने लगता।

तो मैं तुम्हें कोई वैज्ञानिक पद्धति सिखाने की उत्सुकता में नहीं हूं। क्रिश्चिएनिटी ने वह भूल कर ली है। क्रिश्चिएनिटी ने भूल की, उसने अपने सारे साधुओं को, प्रचारकों को वैज्ञानिक पद्धति सिखा डाली। इसलिए ईसाई पादरी बोलते वक्त जितना थोथा होता है इस वक्त जमीन पर, कोई इतना थोथा नहीं होता। क्योंकि तुम्हारा व्यक्तित्व बोलना चाहिए, पद्धति नहीं। हां, किसी को सहज वैज्ञानिकता हो, वह दूसरी बात है। अन्यथा तुम तो परमहंस वृत्ति से चलो। कोई जरूरी नहीं है, राह के किनारे चौरस्ते पर खड़े होकर नाचने लगोगे, दस लोग वहां आ जाएंगे, रोक कर उनको बता देना अपने आनंद की बात। और उनको कहना, किसी को आनंद पाना हो तो आ जाओ।

कोई जरूरी नहीं है कि एक मंच हो और सभा हो, तब तुम बोलोगे। न, भारत का संन्यासी ऐसा नहीं बोलता रहा है। भारत का संन्यासी गांव में जाकर बैठ जाएगा एक झाड़ के नीचे, अपना तंबूरा बजाने लगेगा। चार आदमी आकर बैठ ही जाएंगे। उसके आनंद को देखेंगे, पूछेंगे कि क्या हो गया? उसे कुछ कहना है,

कह देगा। नहीं कहना है, हंसता रहेगा, अपना तंबूरा बजाता रहेगा। गांव में खबर पहुंच जाएगी।

तुम्हारा आनंद ही तुम्हारा संदेश बन जाए। फिर उसे प्रकट करने में तुम अपना रास्ता खोज ले सकते हो। अनूठे-अनूठे रास्ते खोजो जो तुम्हारे व्यक्तित्व के अनुकूल पड़ते हों।

इस तरफ काम में लग जाओ जल्दी, आज से शुरू!

प्रश्नः साधनहीन आदमी आज की दुनिया में कैसे परमात्मा को उपलब्ध हो?

अभी नहीं।

प्रश्नः दुख एक-दूसरे को बांटने से हलका हो जाता है। मतलब जब दुख हुआ, कह दिया, थोड़ा सा रो लिया, तो भूल जाते हैं। अगर नहीं कहते हैं तो नहीं भूलते हैं। मतलब एक दिन, दो दिन उदासी बनी रहती है।

वह उदासी इसलिए रहती है कि दूसरे से कहना या नहीं कहना, यह सवाल नहीं है बड़ा, बड़ा सवाल यह है कि तुम ध्यान दुख पर देती हो इसलिए उदासी रहती है। ध्यान सुख पर दो, हिसाब सुख का रखो।

प्रश्नः फिर दुख तो होता ही है न!

होता ही है, लेकिन ध्यान उस पर देने की जरूरत नहीं है। एक वृक्ष लगा हुआ है, उसमें गुलाब के फूल भी लगे हैं और कांटे भी लगे हैं। फूल एक ही लगा है, हजार कांटे लगे हैं।

प्रश्नः नहीं, जहां हमारी दुनिया में दुख है ही नहीं, सत-चित-आनंद है, तो दुख है ही नहीं...

आपकी बात ही अलग है, आप मजे में रहिए, आपके लिए सवाल ही नहीं है। उसके लिए सवाल है। उसके लिए सवाल है, आपके लिए नहीं है, आप मजे में रहिए। आपको कहां कठिनाई पड़ती है। उसको तो अपना सवाल पूछने दीजिए न! उसको पता नहीं अभी सत-चित-आनंद का। उसको अभी दुख का पता है।

प्रश्नः आपको पढ़ कर तो पता चलता है न!

मेरे कहने से थोड़े ही हो जाएगा। होना चाहिए। अभी तो दुख है, सुख भी है, उन दोनों में तुम्हारी दृष्टि और तुम्हारा ध्यान दुख पर रहे तो तुम गृहस्थी के ढंग से जी रही हो, तुम्हारा ध्यान सुख पर रहे तो तुम संन्यासी के ढंग से जी रही हो। और यह भी हो सकता है कि हजार स्थिति में नौ सौ दफे दुख हो, सौ दफे सुख हो, लेकिन ध्यान सौ पर रखो। तो यह सौ बढ़ता जाएगा। और तुमने ध्यान नौ सौ पर रखा तो वह नौ सौ बढ़ते जाएंगे।

नहीं कहोगी, इससे फर्क नहीं पड़ता। तो भीतर-भीतर सोचती रहोगी। उसे सोचना ही क्यों? उसे स्वीकार कर लिया कि है, ठीक है। उसको स्वीकार कर लो। सुख को गहराओ, और जब भी दुख हो तब सुख को स्मरण करो, और सुख को बढ़ाओ, और सुख की बात करो। एक तीन महीने के भीतर तुम पाओगी कि बाहर हो गई हो। वह दुख अपने कोने में पड़ा रह जाएगा।

और मैं ऐसा नहीं कहता कि सच्चिदानंद है, ऐसा मान लो। ऐसा मान लेना इतना आसान नहीं है। होना चाहिए अनुभव में तुम्हारे। आएगा। अभी तो दुख अनुभव में है, अभी सुख को अनुभव में लाओ। जब सुख इतना बढ़ जाएगा, इतना बढ़ जाएगा कि उसकी बढ़ती के कारण ही दुख क्षीण हो जाएगा, तुम खोज कर भी दुख को न पा सकोगी, तब सच्चिदानंद में प्रवेश होगा। उसके पहले नहीं होगा।

प्रश्नः यह जो पेनडेंट है, इसका क्या अर्थ है?

खुद की बुद्धि भी थोड़ी लगाओ। हर छोटी-मोटी बात पर भी मुझ पर रहना उचित नहीं है। नहीं तो तुम हमेशा दीन-हीन रहोगी। क्योंकि आज कोई पेनडेंट के बाबत तुमसे पूछेगा, कल कुछ और पूछ लेगा, तुम फिर मेरा रास्ता देखोगी कि मैं जब तुम्हें बताऊं तब तुम ... । कुछ अपनी भी बुद्धि लगाओ। और सदा इस बात की फिकर करो कि जितना कम मुझ पर निर्भर रहना पड़े उतना अच्छा। मुझसे जितनी मुक्त हो सको उतना अच्छा।

अपने भीतर से उत्तर आने दो। और अगर कोई उत्तर न आए तो इतना तो कह ही सकती हो कि मेरी स्वतंत्रता है, मेरा आनंद है। मैं नहीं पूछता हूं किसी से कि तुम इस ढंग का कालर क्यों लगाए हुए हो? इस ढंग का जूता क्यों पहने हुए हो? मुझसे किसी को पूछने का हक नहीं कि मैं ऐसी माला क्यों लटकाए हुए हूं। इतना तो हक मुझे है।

नहीं लेकिन कठिनाई दूसरे से नहीं आती, कठिनाई तुम्हारी ही बुद्धि से आती है। सदा दूसरे पर टालती हो। कठिनाई तुम्हारी ही बुद्धि से आती है। इसीलिए तुम्हें उत्तर भी नहीं सूझता। क्योंकि कोई दूसरे का थोड़े ही प्रश्न है, प्रश्न तुम्हारा ही है--कि ऐसा क्यों है? यह तुम्हारी ही दिक्कत है।

अगर तुम्हारी दिक्कत न हो तो उत्तर तुम्हारे भीतर से आ जाएगा। वह नहीं आ पाता। वह नहीं आ पाता, क्योंकि तुम्हारे ही भीतर अड़चन है। ये गेरुए कपड़े क्यों पहने हुए हैं? तुम्हारे ही भीतर यह अड़चन है। यह माला क्यों पहनी हुई है? तुम्हारे भीतर अड़चन है। यह चित्र क्यों लटका हुआ है? तुम्हारे भीतर अड़चन है।

इसको सीधा समझने की कोशिश करो कि मेरे भीतर ऐसी अड़चन है, तब तो तुम मुझसे पूछो। अगर तुम्हारे भीतर कोई अड़चन नहीं है, तब तुम सीधा जवाब दो। पर मुझसे कभी ऐसा मत कहना आकर कि लोग ऐसा कहते हैं तो हम क्या कहें?

अगर तुम्हारे भीतर अड़चन नहीं है तो तुम जो भी कहोगी वह ठीक होगा। अगर तुम्हारे भीतर अड़चन है तो सीधा पूछो मुझसे कि मेरे भीतर अड़चन है कि ऐसा क्यों? तब तो मुझसे बात करने का अर्थ है। नहीं तो इसमें भी धोखा चलता है।

मेरा अपना अनुभव यह है अब तक कि जो भी आदमी आकर मुझसे कहता है कि लोग ऐसा पूछते हैं, उनको हम क्या कहें? वह लोगों का नाम गलत ले रहा है। लोग पूछते होंगे, लेकिन उसके पास खुद ही प्रश्न है। पर तब सीधा पूछो। मेरे आमने-सामने तो बिल्कुल साफ हो जाओ, सीधा मुझसे पूछो कि हमारे भीतर प्रश्न है। तो मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। और अगर तुम्हारे भीतर प्रश्न नहीं है तो मैं कहता हूं, तुम उत्तर देना। जो तुम उत्तर दोगी उस पर मैं आंख बंद किए दस्तखत कर दूंगा। वह ठीक होगा।

और इतना जरूर ख्याल रखो कि खुद भी तो कुछ सोचना शुरू करो। नहीं तो बहुत कठिनाई में पड़ोगी। कल तुम्हें भेजूंगा देश में, विदेश में। वहां तुमसे कोई कुछ भी पूछेगा, तो तुम फिर मेरी राह देखोगी कि वह पता नहीं क्या इसका उत्तर है।

ऐसे नहीं चलेगा। मेरे सारे उत्तर सुन कर, मेरी सारी बात सुन कर भी मैं नहीं चाहता कि तुम मेरे उत्तर कंठस्थ कर लो। मैं यही चाहता हूं कि मेरे सारे उत्तर सुन कर, समझ कर, तुम्हारी समझ इतनी बढ़ जाए कि नये प्रश्नों के उत्तर भी तुम दे सको। तुम्हारी समझ पर मेरा जोर है। तुम्हारे भीतर एक बंधा हुआ उत्तर डाल दूं, उसमें मेरा जोर नहीं है। उसका क्या मूल्य है? कल कोई जरा इधर-उधर घूम कर प्रश्न पूछ लेगा, तुम दिक्कत में पड़ जाओगी। मेरी सारी चेष्टा, तुम्हारी समझ बढ़ जाए, इसकी है। और तुम्हारी समझ से उत्तर आएं, सीधे उत्तर मैं नहीं देना चाहता।

दिन-रात तुमसे इतना बोलता हूं, तुमसे जितना मैं बोल रहा हूं, इस जमीन पर कोई तीन हजार साल में कोई आदमी नहीं बोला है। लेकिन फिर भी तुम्हारे प्रश्न वहीं के वहीं बने रहते हैं। और जब मैं देखता हूं तो मैं पाता हूं कि बड़ी मुश्किल की बात है। उसका मतलब तुम्हारी समझ बढ़ती हुई नहीं मालूम पड़ती। दिन-रात बोल कर भी तुम फिर एक प्रश्न पूछते हो जिससे पता चलता है कि तुम्हारी समझ का कोई उपयोग करने की तुम्हें ख्याल में नहीं है।

अच्छा है कि लोग पूछते हैं, उससे तुम्हारी समझ का एक मौका देते हैं, तुम उत्तर दो। सीधा उत्तर दो, अपने हृदय से आने दो। अगर तुम्हें कोई भी

उत्तर न आता हो तुम्हारे हृदय से, तब तुम सीधा मुझसे पूछो कि यह मेरा प्रश्न है। तब वह प्रश्न तुम्हारा हो गया। तब तुम सीधा मुझसे पूछो कि यह मेरा प्रश्न है, मुझे कोई उत्तर नहीं आता। तब लोगों पर मत टालो। इसी प्रश्न के लिए नहीं कह रहा हूं, सारे प्रश्नों के लिए कह रहा हूं। क्योंकि इसमें बचाव हो जाता है, इसमें ऐसा लगता है कि तुम्हें तो... तुम्हारी तो समझ ठीक है, लोगों की समझ गलत है, वे लोग गड़बड़ पूछ रहे हैं। तो तुम उत्तर दो।

और यह एक प्रश्न नहीं है, ऐसे तो हजार प्रश्न उठेंगे। और मैं हजार ऐसे उपाय करता हूं कि प्रश्न उठने चाहिए। नहीं तो तुम्हारी समझ कैसे विकसित होगी। और वह समझ सीधी आने दो।

और एक बात ठीक से समझ लो कि जरूरी नहीं है कि सब चीजों का तुम्हारे पास तर्कगत उत्तर हो ही। क्योंकि सभी चीजों का तर्कगत उत्तर होता ही नहीं।

तुम किसी व्यक्ति को प्रेम करती हो और कोई तुमसे पूछ ले कि क्यों प्रेम करती हो? तब तुम क्या उत्तर देती हो? क्या उत्तर दोगी? क्या उत्तर होगा तुम्हारे पास? किसी ने तुमसे पूछा, फलां व्यक्ति को प्रेम क्यों? तो क्या उत्तर होगा तुम्हारे पास?

नहीं, तब तुम उत्तर खोजते ही नहीं। तब तुम कहोगे कि प्रेम कोई तर्कगत कारण से नहीं है। प्रेम अतर्क्य है। पहले हमने सोचा नहीं कि क्यों प्रेम, सोचने के पहले प्रेम आ गया है। अब जो भी सोचेंगे वह पीछे है। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है।

लेकिन यह किसी भी उत्तर से ज्यादा गहरा उत्तर है। लेकिन उतना भी साहस नहीं जुड़ता, उतनी भी हिम्मत नहीं है। अगर तुमने मेरी तस्वीर अपने गले में लटका रखी है, कोई तुमसे पूछता है--क्यों? तो तुम्हारी इतनी भी हिम्मत नहीं है कि तुम कह सको कि इस व्यक्ति से हमें प्रेम है। इतनी भी हिम्मत नहीं है।

बस, क्या करना! इतना तो कहा ही जा सकता है कि हमें जिससे प्रेम है उसको हमने अपने गले में लटका लिया है, आपको कोई तकलीफ है?

नहीं, पर तुम अपनी तरफ से कुछ भी नहीं सोचोगी, सब चीजें लेकर बैठी रहोगी। और तब कमजोरी बन जाती है। और तब हर कोई तुम्हें हताश कर जाता है।

पर हताश तुम्हारे भीतर तुम हो खुद, कोई दूसरा तुम्हें हताश नहीं कर रहा है। और तुम्हारा कोई उत्तर दूसरों को अपील नहीं करेगा, तुम्हारा भाव ही अपील करेगा। तुम्हारे गले में पड़ी माला और किसी ने पूछा प्रश्न और तुम्हें चिंतित पाया, तो तुम्हारी माला और तुम दोनों व्यर्थ हो गए। तुम्हें झिझका हुआ पाया, बात खत्म हो गई। यह तो बहुत ही आनंद का क्षण था कि उसने एक मौका दे दिया था, अब तुम मेरे बाबत बात कर सकती थीं। उसने एक अवसर दिया था, अब बहुत बात हो सकती थी, झिझकने की कोई जरूरत न थी। लेकिन तुम्हारी भीतरी कमजोरियां हैं, वे तुम्हें कष्ट देती हैं।

और मेरे कारण भी तुम्हारी बहुत सी दिक्कतें हैं। वह भी मैं तुमसे कहूं। चूंकि मैं निरंतर कहता हूं कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, इसलिए तुममें इतनी भी हिम्मत नहीं हो पाती कि तुम किसी से कह सको कि तुम मेरे शिष्य हो। मेरे कारण ही तुम्हारी ढेर कठिनाइयां हैं। और मैं कठिनाइयां खड़ी करता ही जाऊंगा।

तुम्हारी हिम्मत ही टूट गई भीतर से, तुममें कोई हिम्मत ही नहीं है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, यह मेरा कहना है। लेकिन तुम मुझसे सीख सकते हो।

लेकिन बड़ी मजेदार बात है, बहुत मजेदार बात है। मैं मानता हूं कि गुरु योग्य वही है जो कहे कि गुरु नहीं है। और जो गुरु इनकार कर दे कि मैं गुरु नहीं हूं, उसके पास भी कोई शिष्य होने की हिम्मत रखे, उसको ही मैं शिष्य कहता हूं, उसको ही मैं सीखने वाला कहता हूं। जब गुरु दावा करे कि मैं गुरु हूं, तब तुम शिष्य हो जाओ, तुम दो कौड़ी के हो। ऐसे गुरु के पास खड़े मत होना। क्योंकि वह तुम्हें डॉमिनेट कर रहा है, वह तुम्हारी गरदन दबा रहा है। लेकिन जब गुरु कह दे कि मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूं, तब तुम बड़े प्रसन्न होते हो कि बड़ा मजा हुआ, अपने को शिष्य होने की भी झंझट न रही, सीखने की भी कोई जरूरत नहीं रही।

तुम्हारा सीखना जारी रहेगा। और तुम्हारा सीखना जारी रहे, इसीलिए मैं इनकार कर रहा हूं कि मैं... मेरी तरफ से तुम्हारे ऊपर कोई बंधन नहीं है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि तुम्हारी तरफ से मेरी तरफ कोई लगाव नहीं रहेगा। सच तो यह है कि ऐसी स्थिति में ही लगाव गहरा और पवित्र हो सकता है, जहां कोई आग्रहपूर्ण बंधन नहीं है। जब कोई कहता है कि मैं गुरु नहीं हूं, तो उचित है कि कहे; क्योंकि जब भी कोई कहता है, मैं गुरु हूं, तो वह अपने अहंकार को प्रतिष्ठा दे रहा है। लेकिन जब तुम कहते हो कि मैं शिष्य नहीं हूं, तब तुम अपने अहंकार को प्रतिष्ठा दे रहे हो।

ध्यान रखना, जब कोई गुरु कहता है, मैं गुरु हूं, तब वह अपने अहंकार को प्रतिष्ठा देता है; और जब तुम कहते हो कि हम शिष्य नहीं हैं, तब तुम अपने अहंकार को प्रतिष्ठा दे रहे हो। गुरु के लिए गुरु का दावा करने से हानि है और शिष्य को शिष्य का दावा छोड़ने से हानि है, यह ध्यान में रखना।

लेकिन बड़ी मुश्किल की बात यह है कि मुझे, तुम्हारी तरफ से भी क्या होना चाहिए, वह भी कहना पड़ता है। वह तुम्हें सोचना चाहिए। वह तुम्हें समझना चाहिए। वह तुम्हारी समझ से आना चाहिए। और तब तुम्हें ये कठिनाइयां नहीं रह जाएंगी। नहीं तो तुम्हारी कठिनाइयां रहेंगी। तुम्हारी कठिनाइयां तुम्हारे द्वारा निर्मित हो रही हैं।

और मुझ पर निर्भर मत रहो सारे उत्तर के लिए। और जल्दी ही तुम्हारे मैं बहुत से व्यर्थ के प्रश्नों के जवाब नहीं दूंगा जो मैं दूसरों के जवाब देता हूं। संन्यासी होने के बाद मैं तुम्हारे व्यर्थ के प्रश्नों के जवाब नहीं दूंगा। साधारणतः मैं दूसरों के जवाब देता हूं, तुम्हारे नहीं दूंगा। तुम्हारे इसलिए नहीं दूंगा कि अब मैं तुमसे चाहता हूं कि तुम पूछोगे भी तो भी कोई अर्थ की बात पूछोगे। खोजोगे, करोगे, तो कुछ अर्थ की बात करोगे। अब तुम्हारे व्यर्थ के सवालों को तो मैं ऐसे ही छोड़ दूंगा जैसे तुमने पूछे ही नहीं। और तुम्हें इस योग्य बनाना चाहता हूं कि तुम सारे जवाब अपने भीतर से खोज सको।

और ध्यान रहे, मेरे कोई बंधे हुए जवाब नहीं हैं, इसलिए तुम्हें कभी भी गिल्ट अनुभव नहीं होगी, तुम्हें कभी कोई अपराध अनुभव नहीं होगा। एक तो साधारणतः गुरुओं की दुनिया है, जहां उनके बंधे हुए जवाब हैं। जहां जो गुरु ने कहा है, वही तुम्हें उत्तर देना है। अगर अन्यथा तुमने दिया तो तुम अपराधी हो जाओगे। मेरे साथ तो कठिनाई नहीं है। मैं तो तुम्हें कहता हूं, जो तुम्हारे अंतर-भाव से आए वह तुम जवाब देना। मेरा कोई बंधा हुआ जवाब नहीं है, जिससे तुम्हें मेल, तालमेल रखना है। तुम अपना जवाब देना। मुझसे तो तुम्हें भाव का तालमेल रखना है। तुम आनंद में जीना, बस इतना मुझसे तुम्हारा तालमेल पर्याप्त है। और तुम्हारे आनंद से जो निकलेगा वह ठीक है।

इसलिए बहुत चिंता लेने की जरूरत नहीं है कि मैं क्या कहूंगा इसके बाबत। कोई चिंता लेने की जरूरत नहीं है। तुम्हीं कहना, तुम्हारा उत्तर प्रामाणिक है। इसलिए छोटी-छोटी बातें मुझसे पूछना बंद कर दो। तुम तो जीवन की गहरी बात अब मुझसे पूछो।

और अपने जीवन को निर्मित करना शुरू करो, बातें पूछने से कुछ हल नहीं होगा। जीवन को निर्मित करना शुरू करो। और जल्दी तैयारी लो जो मैंने कहा, तुम्हें जाना दूर-दूर है, जल्दी तैयारी लो।

प्रश्नः जीवन का अर्थ क्या होता है?

जीवन का कोई अर्थ नहीं होता। जीवन का अर्थ खोजना पड़ता है, होता नहीं है। जीवन का अर्थ बनाना पड़ता है, होता नहीं है। आविष्कार करना पड़ता है, होता नहीं है। कहीं रखा हुआ नहीं है जीवन, कि तुम गए और उठा लाए। खोजना पड़ेगा, बनाना पड़ेगा, निर्मित करना पड़ेगा। वही साधना है। जितनी साधना गहरी होगी उतना जीवन का अर्थ प्रकट होता जाता है। कहीं तैयार नहीं रखा है। और जिस दिन मुझे जीवन का अर्थ मिलेगा वह वही नहीं होगा जो तुम्हें मिलेगा।

एक संगीतज्ञ जीवन के अर्थ को संगीत से खोज लेगा, निश्चित उसका स्वाद अलग होगा। एक नर्तक जीवन के अर्थ को नृत्य से खोजेगा, उसका स्वाद अलग होगा। जीवन के अर्थ तो भिन्न होंगे, हरेक के जीवन से निकलेंगे। गुलाब के फूल में गुलाब खिलेगा और चमेली के फूल में चमेली खिलेगी। वह उनका अर्थ होगा। खिलना एक होगा, अर्थ भिन्न होंगे। और अंततः अर्थ के भी जो पार चला

जाता है वही परम जीवन को उपलब्ध होता है, जहां अर्थ भी नहीं होते, जहां कोई मीनिंग की खोज, कोई परपज, कोई प्रयोजन भी नहीं होता।

खोजो! खोजने के रास्ते मुझसे पूछो। अर्थ मैं नहीं बता सकता। कोई नहीं बता सकता। तुम्हारी जिंदगी में आएगा तब तुम्हें पता चलेगा। खोजने के रास्ते मैं बता सकता हूं कि कैसे खोजो। वही मैं कह रहा हूं तुमसे कि दुख को हटाओ, सुख को बढ़ाओ, आनंद में डूबो, तो धीरे-धीरे अर्थ तुम्हें मिलेगा। फिर भी कोई रेडीमेड फार्मूला नहीं होता है कि मैं तुमसे कह दूं कि दो और दो चार, ऐसा कोई जीवन का अर्थ होता है। होता ही नहीं। और तुम्हारे जीवन में क्या अर्थ खिलेगा, कौन सा फूल खिलेगा, नहीं कहा जा सकता, जब तक खिल न जाए। पानी डालो, खाद डालो, फिकर करो, साधना करो, ध्यान लगाओ, डूबो--किसी दिन खिलेगा। और जब खिलेगा तभी हम जान पाएंगे दूसरे भी कि तुम्हारे जीवन का अर्थ क्या है।

मेरे जीवन का अर्थ क्या है, वह मैं जानता हूं। बाकी उससे तुम्हें क्या लेना-देना! उससे तुम्हें क्या लेना-देना, वह तुम्हारे जीवन का अर्थ वह नहीं होने वाला। तुम्हारे जीवन का अर्थ तुम्हारा ही होगा। कैसे खोजोगे, वह पूछते रहो। क्या है, यह मत पूछो। खिल जाएगा तब तुम जानोगे, और और भी जानेंगे। अंततः उसके भी पार चले जाना है। और जब उसके भी पार कोई जाता है--अर्थातीत, ट्रांसेनडेंटल हो जाता है--तभी जीवन पूरा खिलता है। पूरा! जड़ें भी फूल हो जाती हैं, पत्ते भी फूल हो जाते हैं, शाखाएं भी फूल हो जाती हैं, सब फूल हो जाता है। फिर ऐसा नहीं कि वृक्ष पर एक फूल खिला है, बाकी पत्ते हैं और। फूल ही फूल हो जाते हैं। तब फिर तुम खोजो।

ऐसे प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं होता। लोग सोचते हैं बड़े कीमती सवाल पूछ रहे हैं--कि जीवन का अर्थ क्या है? कि परमात्मा क्या है? कि सृष्टि किसने बनाई? लोग सोचते हैं बड़े कीमती सवाल पूछ रहे हैं। इनसे ज्यादा बचकाने और जुवेनाइल सवाल ही नहीं हैं दुनिया में। इनका कोई मतलब नहीं है। जैसे प्रेम क्या है? कोई मतलब नहीं है इस सवाल का। हालांकि बड़ा कीमती लगता है। जीवन का उद्देश्य क्या है? लक्ष्य क्या है? कोई मतलब नहीं है इन बातों का। लगते हैं बड़े कीमती सवाल हैं। जरा भी कीमत के नहीं हैं। क्योंकि ये सवाल ही नहीं हैं। ये तो यात्राएं हैं।

प्रेम क्या है? एक यात्रा है प्रेम। करो, गुजरो, पार होओ; चोटें खाओगे, गिरोगे, घाव बनेंगे; उसमें से अर्थ निकलेगा प्रेम का कि क्या है प्रेम। और जब तुम्हारा अर्थ निकलेगा तो वह वही नहीं होने वाला जो दूसरे का निकला है। उसकी चोटें अलग होंगी, उसकी यात्रा अलग होगी, सब अलग होगा।

ये सारे के सारे सवाल जैसा लोग निरंतर पूछते रहते हैं...

एक गांव में मैं गया। बहुत लोगों ने सवाल पूछे थे, एक आदमी ने छपे हुए तीन सवाल मेरे पास--छपे हुए कार्ड पर! तो मैं बहुत चकित हुआ कि छपे हुए सवाल! यानी छपवा लाया। मैंने पूछा कि भई, ये छपे सवाल किसने पूछे? उसमें एक सवाल यह भी थाः जीवन का अर्थ क्या है? ईश्वर कहां है? किस जगह है? सृष्टि को उसने क्यों बनाया? मैंने कहा, ये छपे हुए सवाल कहां से आ गए?

उस आदमी ने कहा कि मैं सदा से यह पूछ रहा हूं, उत्तर मिलते नहीं। तो मैंने तीस साल पहले छपवा लिए। तीस साल से जो भी आता है उसको पकड़ा देता हूं कि ये सवाल हैं।

मैंने कहा, तुम तीस जन्म भी छप कर रखा रहने दो, तो तेरे को जवाब नहीं मिलने वाले। इसमें कसूर उनका मत समझना जिनसे तूने पूछा है। ये कोई सवाल हैं! छपवा कर रख लिए हैं उसने एक कार्ड पर। वह दे देता है, उनको ही पकड़ा देता है कार्ड को कि कौन बार-बार लिखे! वह सवाल तो वही के वही हैं। ये कोई सवाल नहीं हैं।

गहरे सवाल सदा ही पद्धति के, विधि के, मेथड के होते हैं, एंड के नहीं होते, लक्ष्य के नहीं होते। पूछो कि कैसे जीवन का अर्थ खुलेगा? समझ में आता है। यह मत पूछो कि जीवन का अर्थ क्या है, वह तो खुलेगा तब तुम जानोगे। पूछो कि परमात्मा तक कैसे पहुंचें? यह मत पूछो कि परमात्मा कहां है। वह तो तुम जब पहुंचोगे तब तुम जानोगे कि कहां है। मत पूछो कि जीवन को क्यों बनाया परमात्मा ने। उतरो जीवन में, डूबो! और तुम जानोगे कि क्यों बनाया और कृतकृत्य हो जाओगे जान कर कि क्यों बनाया।